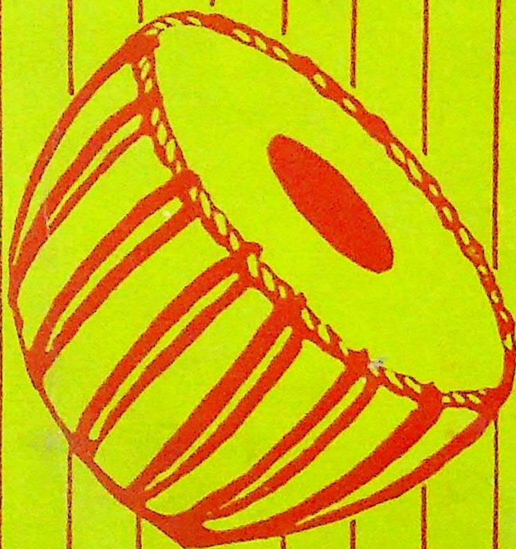
रंग-ध्वनि



हिन्दी प्रकाशन श्रीनगर

रंग-ध्वनि

[मंच तथा रेडियो एकांकी—संग्रह]

संपादक
डॉ॰ रतनलाल शान्त
(गवर्नमेण्ट डिग्री कालेज बेमिना, श्रीनगर)
दुर्जेय छवांग
(गवर्नमेण्ट डिग्री कालेज सोपोर, कश्मीर)

हिन्दी प्रकाशन, श्रीनगर
(कश्मीर)

प्रकाशक :
हिन्दी प्रकाशन
श्रीनगर (कश्मीर)

मूल्य पाँच रुपये पचास पैसे

मुद्रक :
आर० के० प्रिंटर्स,
80-डी कमला नगर,
दिल्ली-110007

दो शब्द

अहिन्दी भाषी क्षेत्र की विभिन्न कक्षाओं के पाठ्यक्रमों में निर्धारित की जाने वाली हिन्दी की पुस्तकों से विद्यार्थी एवं शिक्षक एक विशेष प्रकार की प्रादेशिकता की अपेक्षा रखते हैं। यह उचित भी है और इसकी सीमाएँ भी हैं, जिनके अतिक्रमण से शिक्षण के स्तर पर बुरा प्रभाव पड़ने की आशंका होती है। इसके साथ-साथ ही यह भी अनुभव किया जाता है कि अहिन्दी भाषी क्षेत्र के शिक्षकों के पाठ्यक्रम में योगदान को भी प्रोत्साहन मिलना चाहिए।

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए, कश्मीर विश्वविद्यालय की हिन्दी पाठ्यक्रम समिति ने सर्व-सम्मति से निर्णय किया था कि कश्मीर के हिन्दी शिक्षकों द्वारा पुस्तकें तैयार करवाई जायें और उन्हें पाठ्यक्रम में निर्धारित किया जाय। इसी निर्णय के परिप्रेक्ष्य में यह पुस्तक प्रस्तुत की गई है।

आशा है इससे छात्रों एवं शिक्षकों को सन्तोष मिल सकेगा।

रमेशकुमार शर्मा
आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
तथा
संयोजक, हिन्दी पाठ्यक्रम समिति
कश्मीर विश्वविद्यालय,
श्रीनगर (कश्मीर)

दो औपचारिक शब्द

यह संकलन तैयार करने के पीछे विद्यार्थियों की भाषा तथा साहित्यिक-सूझ का स्तर सुधारने की प्रेरणा रही है, यों कि इन नाटकों को बिना अतिरिक्त सहायता तथा सहायक के समझा जा सके। शब्दार्थ से कृति का साहित्यिक मूल्य नहीं जाना जा सकता, वाक्य को दूसरे तथाकथित सरल वाक्य में भले ही ढाला जा सके। 'नाटक-परिचय' से नाटक का पाठ और नाटक का विशेष प्रसंग समझने में सहायता मिल सकती है, पर 'नाटक-परिचय' नाटक का मूल्यांकन करने में भी सहायता दे सकता है।

अध्यापक बंधुओं से आग्रह है कि इन नाटकों को मंच तथा रेडियो के 'पक्ष-पात' के साथ पढ़ाया जाय और यदि संभव हो, कालेज व स्कूल के मंच पर छात्र-छात्राओं द्वारा खिलवाया जाय। आज कल चलचित्र तथा दूरदर्शन के प्रचलन के कारण विद्यार्थियों में मंच-चेतना उभारना अधिक कठिन नहीं होना चाहिए।

आभार उन लेखकों के प्रति, जिनकी कृतियां इस संकलन में आई हैं।

आभार सहयोगी अध्यापक बंधुओं के प्रति, इस प्रार्थना के साथ कि इस संकलन की कुंजी न लिखें, न छात्रों को कुंजियां देखने को उत्साहित करें।

अभार प्रकाशक श्री राजाराम कपूर के प्रति उनकी लगन तथा बंधुत्व के लिए।

अनुक्रम

भूमिका

नाटक : परिभाषा और स्वरूप

नाटक के प्रसिद्ध भारतीय आचार्य भरत ने 'नाट्यशास्त्र' में नाटक की उत्पत्ति ब्रह्मा से हुई बताई है। लोगों के मनोरंजन के लिए उन्होंने ऋग्वेद से पाठ, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से नृत्य तथा अभिनय और अथर्ववेद से रस लिया तथा पाँचवें वेद 'नाट्यवेद' की रचना की। ब्रह्मा ने ही अप्सराओं का सृजन किया, जिससे नाटकों के लिए स्त्री-पात्र मिल सकें।

यों, नाटक भारतीय परम्परा में बहुत पहले से खेला जाता रहा है। नाटक की आत्मा अभिनय तथा वार्तालाप होते हैं, इसलिए विद्वानों ने वेदों में पाये जाने वाले संवादों (यम—यमी, पुरूरवा—उर्वशी, भार्गव—इंद्र, अगस्त्य—लोपा मुद्रा, इंद्र—इंद्राणी) की परीक्षा करके माना है कि नाटक भारत में वेद-काल से ही प्रचलित था। धार्मिक तथा अर्ध-धार्मिक उत्सवों पर कई नाटकों के खेले जाने के संकेत पुराने ग्रंथों में मिलते हैं।

पश्चिम में सबसे प्राचीन नाटक यूनानी नाटक है। विद्वानों का कहना है कि वहाँ नाटक अधिकतर युद्ध, प्रेम तथा दुःख की कथाओं पर आधारित हैं—इसका कारण है वीर पूजा तथा मृतकों की आत्माओं को प्रसन्न करने की भावना। पश्चिमी नाटक ज्यादातर दुःखान्तक होते हैं जबकि भारतीय नाटक सुखान्तक।

वस्तुतः नाटक मनुष्य के स्वभाव में निहित होता है। दूसरों के स्वभाव, रहन-सहन, बातचीत आदि की नकल उतारना; खुद बातचीत करते हुए, अपने भाषण को प्रभावशाली बनाने के लिए अपने अंगों को हिलाना; स्वभाव के ही अनुसार मन के भावों को प्रकट करना, जैसे प्रेम, क्रोध, घृणा, लोभ,

उत्साह आदि जतलाना—कुछ ऐसी वृत्तियाँ हैं जो मनुष्य में जन्म से पाई जाती हैं। नाटक में केवल इतना और होता है कि मनुष्य की इस स्वाभाविक प्रवृत्ति को किसी कथा का आधार दिया जाता है। अपने को अभिव्यक्त या प्रकट करना मनुष्य जाति के लिए इसलिए भी जरूरी होता है क्योंकि वह अपनी सुरक्षा चाहती है, रोज़ की एकरस ज़िंदगी में पैदा होने वाली ऊब कम करना चाहती है, अपने को मानसिक आनंद देना चाहती है। आनंद के लिए जो कर्म किया जाय वह कलात्मक कर्म कहलाता है। अपने को अभिव्यक्त करने से जो हल्कापन या आनंद या दुख से मुक्ति मिलती है वह कला को जन्म देती है। इसलिए नाटक एक ऊँची कला है।

संगीत, नृत्य, चित्रकला, नृत्यकला आदि की तरह नाट्यकला भी एक व्यवित के मन में जन्म लेकर दूसरों के मन तक पहुँचने से ही पूर्ण होती है। पर नाटक अन्य कलाओं से ज़रा भिन्न है। अन्य कलाएँ व्यक्तियों से होते हुए प्रचारित होती हैं. पर नाटक के लिए यह आवश्यक होता है कि इसे एक समूह द्वारा साथ मिलकर तैयार किया जाय और समूह के सामने ही पेश किया जाय। नाटक केवल पढ़ने के लिए लिखा नहीं जाता। जो नाटक केवल पढ़ा जा सके, खेला न जा सके वह केवल शब्दाडंबर होके रह जाता है। नाटक मंच के लिए ही होता है इसलिए यह ज़रूरी होता है कि नाटककार का मंचानुभव हो। संसार के बड़े नाटककारों का संबंध मंच से रहा है और अपने मंच तथा अभिनेताओं की योग्यता अयोग्यता को ध्यान में रखकर ही उन्होंने नाटकों की रचना की है। भरत ने नाटक खेलने वाले सूत्रधार, नट, तौरीय (संगीत निर्देशक) वेषकर, आभरणकृत, चित्रज्ञ, रंजक आदि का विवरण दिया है। यूनानी नाटक जिन शालाओं में खेले जाते थे, उनके अवशेष अब भी हैं। भारत में भी भास, कालिदास, हर्ष आदि के नाटकों की रंग-शालाओं के संकेत तथा गुफा मंदिरों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। शेक्सपियर स्वयं नाठक कम्पनियों में नौकरी करके ही नाटककार बन सके। बर्नार्ड-शॉ, चेखव, गाल्सवर्दी, स्ट्रिंडबर्ग आदि प्रख्यात यूरोपी नाटककार सीधे मंचों से संबद्ध रहे। हिंदी में भी वे ही नाटककार कुशल तथा कलाविद् माने जाते हैं जो किसी न किसी रूप में मंच से सम्बद्ध रहे। भारतेंदु का सीधा सम्पर्क रंगमंच से था,

प्रसाद तक आते-आते रगमंच उजड़ने या भ्रष्ट होने लगा था—इसका जिक्र उन्होंने अपने निबंधों में किया—और इसलिए उनके नाटकों में यथोचित रंग-चेतना नहीं है। 'अश्क', रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर, प्रभाकर माचवे के समय हिंदी रंगमंच ने नया रूप ग्रहण करना शुरू किया और लक्ष्मीनारायण लाल तथा मोहन राकेश के समय देश के प्रमुख केन्द्रों में व्यावसायिक रंगमंच भी चलने लगा, इसलिए इनके नाटक अभिनय तथा कला की दृष्टि से ज्यादा पूर्ण हैं।

नाटक का पूरा स्वरूप समझने के लिए इसके अंगों या तत्त्वों का विवरण समझना आवश्यक है। भारतीय आचार्यों ने नाटक के तीन तत्त्व बताए हैं—वस्तु, नेता तथा रस और इनके आधार पर नाटक (जिसे अधिकतर 'रूपक' कहा गया) के भेद बताए गए। परन्तु आज का नाटक भारतीय परम्परा की अपेक्षा पश्चिमी परम्परा का अनुसरण करता है, इसलिये पश्चिमी दृष्टि से ही नाटक के तत्त्वों का वर्णन आवश्यक है। नाटक के छः तत्त्व होते हैं—वस्तु, चरित्र, वार्तालाप, देशकाल, शैली तथा उद्देश्य।

नाटक का आधार उसका कथानक या कथावस्तु है। कथावस्तु अन्य वर्णनात्मक विधाओं जैसे कहानी और उपन्यास का भी आधार होती है। यह आवश्यक नहीं कि नाटक कोई कहानी ही बताए; बल्कि अच्छे नाटक केवल एक कथास्थिति देते हैं—चरित्रों के आपसी संबंधों, उनकी बातचीत के विशेष ढंग तथा किसी उद्देश्य तक दर्शक को पहुँचाने की एक घटना भर। पर घटना का आधार कोई क्रमिक कथा होती है। जहाँ क्रम आया—वार्तालाप का क्रम, चरित्रों के स्थल पर आने-जाने का क्रम—वहीं कथा जन्म लेती है।

वार्तालाप के अंतर्गत पात्रों के हाव-भाव, अंग संचालन तथा अभिनय भी आता है। कोरा वार्तालाप नाटक नहीं। यहाँ तक कि नाटक के एक प्रकार—रेडियो नाटक में—वार्तालाप ही चरित्रों का अभिनय, नाटक का देश-काल आदि बताते हैं। वहाँ ध्वनि का उतार-चढ़ाव आ[illegible] होता है। वार्तालाप वास्तविक साधन है, नाटककार के लिए दर्शक [illegible] बात पहुँचाने का, कथावस्तु बतलाने का। नाटक में वर्णन नहीं [illegible] लिए वार्तालाप को यह ज़िम्मेदारी निभानी पड़ती है। कथावस्तु [illegible]ते

हैं—आधिकारिक या मुख्य कथावस्तु तथा प्रासंगिक या गौण या सहायक चरित्रों की कथा। इन दोनों भागों का स्पष्टीकरण वार्तालाप करता है। वार्तालाप चरित्रों का गुण बन जाता है यद्यपि नाटकों में वार्तालाप श्राव्य या अश्राव्य भी हो सकते हैं। अश्राव्य, यानी न सुने जाने योग्य, वस्तुतः मंच पर खड़े दूसरे चरित्रों के लिए अश्राव्य होते हैं। रंगशाला में बैठे दर्शकों के लिए सब वार्तालाप श्राव्य ही होते हैं। निस्संदेह नाटक के कई प्रकारों जैसे मौन नाटिकाओं (Mime Plays) में केवल अंग-भंगिमा द्वारा पूरी स्थिति समझाई जाती है। पर यहाँ इतना समझना जरूरी है कि अभिनेता मौन अभिनय करता है पर कथास्थिति तब तक उभर नहीं सकती जब तक कि दर्शक स्वयं अपने मन में वार्तालाप की सृष्टि न करता चले।

देशकाल निभाने के लिए नाटक को अंकों में बाँटा जाता है। हर अंक एक ही स्थान, एक ही समय तथा एक ही प्रकार के कर्म या व्यापार का चित्र देता है। यह आवश्यक है कि एक लंबी कथा छोटे-छोटे अंकों में बाँटी जाय वरना यह असंभव होगा कि एक ही स्थान पर, मंच के सीमित घेरे में एक ही समय कई स्थानों की घटना दिखाई जाय। दो अंकों के बीच के समय तथा स्थान के अंतराल की कोई सीमा नहीं। उस पर कोई बंधन नहीं।

भाषा शैली नाटक की कथावस्तु तथा चरित्र-चित्रण के लिए आवश्यक साधन का काम करती है। शब्दों का सही तथा सांकेतिक प्रयोग, वाक्य रचना, प्रभावोत्पादकता के लिए सही शैली का चुनाव और नाटकीय-स्थिति का निर्वाह हर नाटक के लिए महत्त्वपूर्ण है।

उद्देश्य नाटक का मूल प्रेरणा-स्रोत तथा कथ्य होता है। नाटककार के व्यक्तित्व की झलक उसकी कृति के द्वारा स्थापित उद्देश्य में मिलती है।



एकांकी नाटक

संस्कृत में एकांकी अर्थात् एक अंक वाले नाटक की विशेष परम्परा नहीं थी। रूपक के भेदों-उपभेदों में—'अङ्क', 'भाण', 'व्यायोग', 'वीथी', 'ईहामृग'

तथा 'प्रहसन' आते हैं पर इन नाट्य रूपों की केवल आकार की दृष्टि से आधुनिक एकांकी से थोड़ी समानता हो सकती है। एकांकी नाटक पश्चिम की देन है। संस्कृत में इनको गौण माना जाता था जबकि हिंदी का एकांकी स्वतंत्र महत्त्व रखता है।

हिंदी का एकांकी, निश्चित रूप से, पश्चिमी प्रभाव से जन्मा है। खुद पश्चिम में एकांकी उतना पुराना नहीं जितना कि सामान्य नाटक। इसकी उत्पत्ति भी संयोग से हुई। बड़े नाटकों को देखने के लिए आए हुए लोगों को आने में देर होती या उन्हें अपना ठीक स्थान ग्रहण करने में कुछ समय लगता। जब तक कि मूल नाटक आरंभ हो जाता, दर्शकों के मनोरंजन क लिए छोटे-मोटे पट-उत्थानकों या 'कर्टन रेज़र्स' का प्रबंध किया जाता। ये छोटे-मोटे दृश्य ही आगे चलकर स्वतंत्र नाटकों में विकसित हुए और इनकी माँग होने लगी। सन् 1903 में W. W. Jacob की कहानी 'बंदर का पंजा' को विधिवत् एक कर्टन रेज़र के रूप में पेश किया गया। यह प्रस्तुति इतनी अच्छी थी कि दर्शक केवल यही देखकर संतुष्ट हुए और मुख्य नाटक देखे बिना ही उठके चले गए। तब से यह स्वतंत्र विकास करने लगा।

एकांकी नाटक बड़े या कई अंकों वाले नाटक का एक भाग नहीं होता और न ही बड़े नाटक को छोटा करके एकांकी बनाया जा सकता है। यह ठीक है कि एकांकी में बड़े नाटक की तरह कथा का विस्तार नहीं होता। चरित्रों की संख्या कम हो सकती है पर यह जरूरी नहीं कि बड़े नाटक में चरित्र बहुत हों। वास्तव में एकांकी नाटक में घटना, स्थिति और चरित्र की एकता तथा घनत्व पर जोर दिया जाता है जिससे जीवन के किसी एक पक्ष की एक प्रभावशाली झलक दी जा सके।

एकांकी का जन्म चूंकि रंगमंच की तथा दर्शकों की आवश्यकता के अनुरूप हुआ, इसलिए इसमें तीन नाटकीय इकाइयों (अन्वितियों) या संकलन-त्रय का होना आवश्यक हुआ। स्थान, समय तथा कर्म या व्यापार की इकाई होना एकांकी के लिए अनिवार्य है। स्थान की अन्विति की दृष्टि से यह माना जाता रहा है कि एक ही सेट (Set) पर एकांकी नाटक खेला जाना चाहिए। अधिकांश एकांकियों में इस इकाई का पालन होता है। समय की इकाई के

बारे में पुराना पश्चिमी (अरस्तू का) मत यह था कि २४ घण्टों का ही समय-विस्तार होना चाहिए। पर, जब एक से ज़्यादा सेटों (दृश्य बंधों) पर एकांकी खेला जाता है तो इस इकाई का बंधन नहीं माना गया। व्यापार या कर्म संबंधी इकाई को आम तौर पर सब नाटककार मानते हैं अर्थात् वे एक ही मुख्य कथा को लेते हैं और यदि कोई गौण कथा हुई तो उसे मुख्य कथा से पूरी तरह जोड़ देते हैं। इससे सारा नाटक एक ही प्रभाव देता है।

एकांकी नाटक के तत्त्व बड़े नाटक से ज़्यादा भिन्न नहीं, पर घने प्रभाव की उत्पत्ति के लिए उसके तीन ही मुख्य तत्त्व माने जाते हैं—कथावस्तु, चरित्र तथा वार्तालाप। कथावस्तु एकांकी का आधार है और यह विषय से भिन्न होती है। विषय प्रेम हो सकता है पर कथावस्तु प्रेम के संयोग वियोग या किसी और पक्ष पर आधारित कोई कथास्थिति होती है। एकांकी में कथावस्तु कई चरणों से गुज़रती हुई उद्देश्य तक पहुँचती है। ये चरण हैं—उद्घाटन, विकास, उत्कर्ष, संघर्ष और निष्कर्ष। इन सब में संघर्ष का चरण सबसे ज़्यादा महत्त्व रखता है। संघर्ष तो एकांकी की जान है और उसे सही अभिप्राय देता है। एकांकी में यों कम चरित्र ही होते हैं पर उनमें एक या दो ज़्यादा महत्त्व रखते हैं पर किसी भी चरित्र का सम्पूर्ण चरित्र नहीं दिया जा सकता। फिर भी जैसा भी चित्र खींचा जाता है वह दर्शक पर गहरा प्रभाव डालता है। वार्तालाप से चरित्रों की विशेषताएँ उद्घाटित होती हैं। ये एकांकीकार का सबसे सशक्त साधन होते हैं।

विषय की दृष्टि से एकांकी ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक या राजनैतिक हो सकता है। चरित्र-चित्रण ही जब नाटक का मुख्य ध्येय हो तो वह चरित्र प्रधान कहलाता है। प्रधानता की दृष्टि से एकांकी के अन्य भेद भाव-प्रधान, विचार प्रधान तथा समस्या प्रधान हैं। शैली की दृष्टि से निम्नांकित भेद किए जा सकते हैं :

फैंटेसी, काव्य-एकांकी, प्रहसन, रेडियो रूपक

यद्यपि विषय या शैली की दृष्टि से किसी भी प्रकार का नाटक रेडियो के लिए तैयार किया जा सकता है और उसी रूप में ढाला जा सकता है और उसी प्रकार रेडियो नाटक को मंच के लिए परिवर्तित किया जा सकता है,

लेकिन मूलतः मंच नाटक तथा रेडियो नाटक में अन्तर है। दोनों का माध्यम भिन्न है। उपर्युक्त संकलनत्रय केवल मंच नाटक के लिए होते हैं। रेडियो रूपक के तत्त्व भी मंच नाटकसे भिन्न होते हैं। उसमें समय तथा स्थान की एकता की कोई पाबंदी नहीं और कमेंटरी (वाचन) या संगीत के प्रभावों से समय तथा स्थान का बड़ाअन्तराल दिखाया जा सकता है। परन्तु केवल ध्वनि का माध्यम होने सेरेडियो नाटक एक ही इकाई में बंधता है और इस प्रकार एकांकी नाटक के निकट पड़ता है। इसके तत्त्वों में कथा वस्तु, वार्तालाप तथा ध्वनि प्रभाव आते हैं। कमेंटरी या वाचन भी किसी रेडियो नाटक का तत्त्व हो जाता है।



हिंदी एकांकी साहित्य का विकास

आलोचकों के मतानुसार जयशंकर प्रसाद के नाटक 'एक घूँट' को पहला हिन्दी एकांकी कहा जा सकता है यद्यपि उसमें आधुनिक पश्चिमी एकांकी की सब विशेषताएँ नहीं पाई जातीं। उसके बाद डॉ० रामकुमार वर्मा के एकांकी 'बादल की मृत्यु' (1930) तथा भुवनेश्वर के 'श्यामा : एक वैवाहिक विडंबना' (1933) की रचना हुई। यों तो भारतेन्दु हरिशचन्द्र के अपने तथा उनके समकालीन नाटककारों के भी कुछ छोटे एक-अंकी नाटक मिलते हैं पर वे आधुनिक दृष्टि से नहीं, बल्कि संस्कृत की प्राचीन परम्परा से प्रभावित हो के लिखे गए। हिन्दी एकांकी के आरम्भिक युग में रामकुमार वर्मा तथा भुवनेश्वर ने नवीन शैली का प्रतिपादन किया और बाद में उपेन्द्र नाथ 'अश्क' ने इसे संवारा। उस समय के प्रसिद्ध एकांकियों में रामकुमार का 'पृथ्वीराज की आंखें' (1936), भुवनेश्वर का 'प्रतिभा का विवाह' (1932), रोमांस : रोमांच (1935), उपेन्द्रनाथ अश्क के 'पापी' (1937), 'लक्ष्मी का स्वागत' 'अधिकार का रक्षक' (1938) उल्लेखनीय हैं। फिर तो अन्य नाटककारों ने एकांकी लेखन की ओर अपना ध्यान दिया और बीसियों एकांकियों की रचना हुई। जगदीश चन्द्रमाथुर, उदय शंकर भट्ट, एस० पी० खत्री, लक्ष्मी नारायण मिश्र, सेठ गोबिन्ददास, गोबिन्द वल्लभ पन्त, वृन्दावन लाल वर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी, विष्णु प्रभाकर,

भगवती चरण वर्मा आदि नाटककारों के कई एकांकी प्रकाशित हुए, पर एक बात ध्यान देने की है कि मंच के अभाव के कारण या फिर अपने समय के मंच से न जुड़े होने के कारण हिन्दी के अधिकांश एकांकी केवल पढ़े जाने के लिए लिखे गए, खेले जाने के लिए नहीं। रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर, जगदीश चन्द्र माथुर, अश्क और एस० पी० खत्री सीधे मंचों से जुड़े रहे इसलिए इनके नाटक कला की दृष्टि से अधिक पूर्ण हैं। इनके नाटकों में मंचीयता है। हिन्दी एकांकी का विकास मंच के ही विकास से जुड़ा हुआ है। स्कूलों, कॉलेजों तथा शौकिया क्लबों के लिए लिखने वाले नाटककार ज्यादा सफल रहे। स्वतन्त्रता के बाद हमारे देश के कुछ शहरों में व्यावसायिक नाटक मंडलियाँ भी स्थापित हुईं और अब तो ऐसे कई क्लब हैं जो पेशेवर हैं। फिर रेडियो तथा टेलिविज़न ने भी नाटक काफी विकसित किया। स्वतन्त्रता के बाद के नाटककारों में लक्ष्मी नारायण लाल (ताजमहल के आंसू, नाटक बहुरंगी), धर्मवीर भारती (आवाज़ का नीलाम, संगमरमर पर एक रात), सत्येन्द्र शरत् (तार के खंबे, प्रतिशोध), मोहन राकेश (शायद, सबसे बड़ा सवाल), एस० पी० खत्री (दादा की मौत) उल्लेखनीय हैं। वास्तव में समय के साथ हिन्दी एकांकी भी आगे बढ़ा है और आज के व्यस्त वैज्ञानिक युग में मनोरंजन के हल्के साधन के रूप में काफी लोकप्रियता पा रहा है। शौकिया रंगमंच के लिए अब जितने नाटकों की ज़रूरत पड़ती है उतने उपलब्ध नहीं होते और इसलिए विदेशी तथा अन्य भारतीय भाषाओं से अनुवाद करके नाटक खेले जाते हैं। इस दृष्टि से हिन्दी एकांकी का भविष्य काफी उज्जवल है और अन्य भाषाओं की रचना के प्रभाव के आदान-प्रदान से यह समृद्ध होता रहेगा। संसार में आज कथा तथा प्रस्तुत करने की दृष्टि से काफी नये प्रयोग किए जा रहे हैं। देश में प्राचीन नाट्य परम्परा को फिर से व्यवस्थापित किया जा रहा है तथा लोक नाटकों की शैली का भी उपयोग हो रहा है। हिन्दी का नाटक इन सब अनुभवों से लाभान्वित होता रहेगा।

डॉ० रामकुमार वर्मा

परिचय :

इनका जन्म 1905 ई० में हुआ। इनका एकांकी 'बादल की मृत्यु' हिन्दी के आरम्भिक एकांकियों में गिना जाता है। उन्होंने तब लिखना आरम्भ किया जब हिन्दी एकांकी का उदय हो रहा था और आज तक लगातार इस क्षेत्र में प्रयोग कर रहे हैं। अपने एकांकियों में उन्होंने अपने समय के समाज में प्रचलित कई समस्याओं का वास्तविक चित्रण किया है। हिन्दी एकांकी साहित्य को कलात्मक धरातल प्रदान करने में इनका विशेष योग रहा है।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने सभी विषयों से सम्बन्धित एकांकियों की रचना की है, जिनमें प्रहसन तथा ऐतिहासिक और सामाजिक समस्याओं पर लिखे एकांकी भी हैं। उन्होंने अपने एकांकियों में उत्तर प्रदेश के शिक्षित वर्ग की भिन्न-भिन्न मानसिक स्थितियों का चित्रण किया है। वर्मा जी का हर नाटक किसी-न-किसी सामाजिक यथार्थ पर आधारित होता है। उनके नाटक के पात्र तथा परिस्थितियाँ उस सामाजिक यथार्थ को जीवन्त बनाते हैं। कई स्थानों पर उनके संवाद लम्बे हो जाते हैं जिसके कारण नाटक की गति उतनी तीव्र नहीं रह पाती।

डा० वर्मा का अधिकांश जीवन शिक्षा-विभाग की सेवा में बीता है। प्रयाग विश्वविद्यालय के अध्यक्ष पद के अतिरिक्त और भी कई शिक्षा-समितियों तथा सांस्कृतिक संस्थाओं का कार्यभार संभालते रहे। मास्को में भी कुछ वर्ष हिन्दी शिक्षा-कार्य की देख भाल करते रहे।

डॉ० रामकुमार एकांकीकार ही नहीं वरन् एक सफल कवि भी हैं। डॉ० वर्मा का नाम छायावादी काव्य-धारा के प्रमुख कवियों में गिना जाता है। अपनी महत्त्वपूर्ण साहित्यिक देन के साथ शिक्षा को भी इन्होंने कई रचनाएँ दी हैं। इनके गम्भीर अध्ययन तथा कवि व्यक्तित्व की झलक इनके नाटकों में भी देखी जा सकती है। इनके अधिकांश नाटक मंच पर प्रस्तुत किये जा चुके हैं और आकाशवाणी से प्रसारित हो चुके हैं। इनके निम्नलिखित एकांकी संग्रह प्रकाशित हैं :

दीपदान, रेशमी टाई, सप्त किरण, रिमझिम, पृथ्वीराज की आखें, चारुमित्रा, आदि।

समुद्रगुप्त पराक्रमाङ्क

(रंग-नाटक)

चरित्र

समुद्रगुप्त पराक्रमांक	:	पाटलिपुत्र के सम्राट
धवल कीर्ति	:	सिंहल के राजदूत
मणिभद्र	:	भांडागार के अधिकरण
कोदण्ड	:	महाबलाध्यक्ष
घटोत्कच्च, वीरबाहु	:	भगवान बुद्ध देव की प्रतिमा निर्मित करने वाले शिल्पी
प्रिय दर्शिका	:	सम्राट समुद्रगुप्त की वीणावाहिनी
रत्न प्रभा	:	राजनर्तकी
प्रहरी		

स्थान : पाटलिपुत्र

काल : 420 वि०

[भांडागार का बाहरी कक्ष । दीवारों पर अनेक नृत्य मुद्राओं में नर्तकियों के चित्र हैं। स्फटिक पत्थरों के स्तम्भों पर दीपों का आलोक हो रहा है । पीछे लौह दण्डों से बना हुआ परिवेषण है ।

मंच के बीच में समुद्रगुप्त खड़े हुए हैं। शरीर पर श्वेत और पीत परिधान । रत्न-जटित शिरो-भूषण, केश उन्मुक्त, पुष्ट वक्षस्थल जिस पर रत्नों के हार । कटिबन्ध में खड्ग। उनकी मुद्रा गंभीर है।

उनके दाहिनी ओर सिंहल के राजदूत धवल कीर्ति और राज्य के महाबलाध्यक्ष कोदण्ड हैं और बाईं ओर भांडागार के अधिकरण मणिभद्र हैं। धवल कीर्ति का पीत, मणिभद्र का श्वेत और कोदण्ड का नील परिधान है । कोदण्ड सैनिक वेश में हैं । द्वार पर शस्त्र लिये हुए प्रहरी । समुद्रगुप्त धवल कीर्ति को सम्बोधित करते हुए कहते हैं ।]

समुद्रगुप्त : तो अब यह निश्चय है कि भांडागार में वे रत्न नहीं हैं ?

धवल कीर्ति : यह तो आपने स्वयं देखा, सम्राट ! किन्तु भांडागार से इस तरह चोरी हो जाना आश्चर्यजनक है। भांडागार के अधिकरण मणिभद्र स्वयं कुछ नहीं कह सकते ।

समुद्रगुप्त : **(तीव्र स्वर से)** क्यों नहीं कह सकते ? **(मणिभद्र से)** मणिभद्र, वे रत्न कैसे चोरी चले गए ? आज तुम्हारा वह विश्वास कहाँ है जिसमें दो युगों से पाटलिपुत्र की मर्यादा पोषित होती आ रही थी ? वह विश्वास कहाँ है जिसमें मैंने तुम्हे कौशल, कांची और देवराष्ट्र की सम्पत्ति सौंपी थी ? वह विश्वास कहाँ है जिसमें लिच्छिवि वंश का गौरव निवास करता रहा है ? क्या उस विश्वास में विष प्रवेश कर गया ? बड़ी से बड़ी सम्पत्ति की रक्षा करने का अनुभव लेकर भी तुम दो हीरक खंड़ों की रक्षा नहीं कर सके ? तुमने मेरे विश्वास में इन रत्नों की केवल दो चिनगारियों से आग लगा दी। तुम्हारे ये श्रम-बिन्दु यदि रक्त-बिन्दु बन जाते ... **(क्रूर दृष्टि से)**

मणिभद्र : सम्राट, अच्छा होता यदि मेरे प्रत्येक रोम से रक्त बिन्दु निकल कर आपके चरणों पर गिर कर कह सकते कि मैं निर्दोष हूँ। यदि रक्त-बिन्दु वाणी रहित हैं तो आप उन्हें दूसरी भाषा दीजिए; किन्तु आपके विश्वास की पवित्रता खोकर मैं जीवन की रक्षा नहीं चाहता !

धवल कीर्ति : सम्राट, आपका विश्वास खोकर कौन अपने जीवन की रक्षा करना चाहेगा ? किन्तु मणिभद्र की संरक्षा से रत्नों का चोरी जाना आश्चर्यजनक है !

मणिभद्र : यह आश्चर्य ही मुझे मृत्यु-पीड़ा का दंशन है। सम्राट ने जिस विश्वास से मुझे अश्वमेध यज्ञ की संचित निधि सौंपी थी, उसी विश्वास की पवित्रता से मैंने उन रत्नों की संरक्षा की थी; फिर भी प्रातःकाल वे राज्य भांडागार में नहीं पाये गये।

समुद्रगुप्त : भांडागार के एक मात्र अधिकारी तुम्हीं हो मणिभद्र, फिर तुम्हारी आज्ञा के बिना यहाँ कोई प्रवेश ही कैसे कर सकता है ?

धवल कीर्ति : यही तो आश्चर्य है, सम्राट !

समुद्रगुप्त : आश्चर्य से अपराध नहीं छिपाया जा सकता, धवल कीर्ति ! अपराध की सहस्त्र जिह्वाएँ हैं जो अग्नि-शिखा की भांति चंचल हो सकती हैं और (**मणिभद्र से**) तुम यह जानते हो मणिभद्र कि भांडागार की रक्षा क्या है ! वह कृपाण के दर्पण में बन्द की हुई छाया है; कृपाण से मुक्त नहीं की जा सकती।

मणिभद्र : सम्राट, मैं अपनी मृत्यु हाथ में लेकर आया हूँ। रत्नों का खो जाना ही मेरे लिए सबसे बड़ा अपराध है। मुझे केवल अपने भाग्य-दोष का दुःख है। यश और कीर्ति के साथ सम्राट की सेवा पच्चीस वर्षों तक करने के अनन्तर इस भांति अपयश से मेरे जीवन का अन्त हो। मैं आपसे अपनी मृत्यु माँगने आया हूँ, सम्राट !

समुद्रगुप्त : मुझसे अपनी मृत्यु माँगने की भी आवश्यकता है ?

मणिभद्र : सत्य है, सम्राट, मैं अभी तक अपने जीवन की समाप्ति कर चुका होता किन्तु आपके समक्ष अपनी आत्मा की पवित्रता के दो शब्द कहे बिना मुझे परितोष न होता। आप मेरे चरित्र के सम्बन्ध में अनेक बातें सोच सकते थे। अब मुझे संतोष है, मैंने अपनी आत्मा की पुकार आप तक पहुँचा दी। अब मुझे आज्ञा दीजिए।

समुद्रगुप्त : मणिभद्र, अभी तुम नहीं जा सकोगे। तुम्हारे उत्तरदायित्व के साथ राज्य का भी उत्तरदायित्व है। यदि तुम्हारे अधिकार में सुरक्षित की गई अश्वमेध यज्ञ की सारी सम्पत्ति भी नष्ट हो जाती तो मुझे इतना दुःख न होता जितना इन दो रत्न खंडों की चोरी से हुआ है। इन रत्नों के साथ जैसे मेरे हृदय की सारी शांति और पवित्रता भी खो गई है।

धवल कीर्ति : सम्राट, उन रत्नों का सम्बन्ध भी पवित्रता से ही था। वे सिंहल की राजमहिषी के कंठहार के प्रधान रत्न थे जो भगवान बुद्धदेव की प्रतिमा के लिए विश्वास से आपकी सेवा में भेजे गये थे।

समुद्रगुप्त : (आश्चर्य से) राजमहिषी के कंठहार से !

धवल कीर्ति : हाँ, सम्राट, मैं ही राजदूत बनकर सिंहल से यह सम्पत्ति लाया हूँ। जब सिंहल के महासामन्त सिरिमेघवन्त ने एक लक्ष स्वर्ण-मुद्राएँ बोधगया में एक विशाल मठ बनवाने और भगवान् बुद्धदेव की रत्न-जटित स्वर्ण-प्रतिमा निर्माण करने के निमित्त स्वर्ण-पात्रों में सुसज्जित की तब राजमहिषी कुमारिला के नेत्रों में श्रद्धा और प्रेम के आँसू छलक आये। उन्होंने उसी समय महासामन्त से प्रार्थना की कि उनके कंठहार के दो प्रधान हीरक-खंड श्रीमान की सेवा में इस अनुरोध के साथ भेज दिये जायें कि ये हीरक-खण्ड भगवान् बुद्धदेव की प्रतिमा के अंगुष्ठ नखों के स्थान पर विजड़ित हों ! सम्राट, ये दोनों हीरक जैसे राजमहिषी कुमारिला की श्रद्धा और प्रेम के दो पवित्र अश्रुबिन्दु थे, जो आज खो गये। इन अश्रु-

बिन्दुओं के खो जाने से भगवान् के चरणों पर राजमहिषी की श्रद्धांजलि न चढ़ सकेगी। प्रतिमा अपूर्ण रहेगी, सम्राट !

समुद्रगुप्त : (आवेग से) तब सुनो, धवल कीर्ति, तुम सिंहल के राजदूत हो। मेरे महासामन्त की भेंट लाने वाले। तुम्हारे सामने मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि सम्राट समुद्रगुप्त यदि उन रत्न-खंडों को नहीं खोज सका तो वह अपने राज्याधिकार का ध्यान छोड़कर भगवान् बुद्धदेव की प्रतिमा के सामने कठोर प्रायश्चित करेगा !

मणिभद्र : सम्राट !...

धवल कीर्ति : सम्राट !...

समुद्रगुप्त : रुको राजदूत, यह प्रतिज्ञा समस्त साम्राज्य के भाग्य निर्णय के साथ घोषित की जा रही है। यह बुद्धदेव के प्रति मेरे अपराध का दण्ड है। राजमहिषी के विश्वास की रक्षा न कर सकने वाले का प्रायश्चित है। मेरी घोषणा प्रचारित हो और इसके साथ मेरे भांडागार के अधिकरण का कलंक भी अमर हो। **(मणिभद्र की ओर दृष्टि)** वह किस रूप में हो, उसका निर्णय अभी होगा।

मणिभद्र : सम्राट्, आपके इन शब्दों में मेरी मृत्यु भी मेरा उपहास कर रही है। जीवन का एक-एक क्षण मुझे शूल की भाँति चुभ रहा है। मैं आपकी सेवा से जाने की आज्ञा चाहता हूँ, जिससे मैं अपने इस कलंकित जीवन को अधिक कलंकित न कर सकूँ।

समुद्रगुप्त : ठहरो मणिभद्र, मेरी प्रतिज्ञा पूर्ति में तुम्हारी सहायता अपेक्षित होगी। तुम्हारी आत्महत्या से मेरा कलंक मिटेगा नहीं। मुझे कुछ बातों के जानने की आवश्यकता है।

धवल कीर्ति : सम्राट्, यदि एकांत की आवश्यकता हो तो मुझे आज्ञा दीजिए।

समुद्रगुप्त : नहीं धवल कीर्ति, ठहरो, तुम्हारे ही सरक्षण में यह मठ और प्रतिमा निर्मित हुई है, तुम्हारी उपस्थिति भी आवश्यक है। मुझे विश्वास है, तुम अपने संकेतों से मेरे प्रयत्न में सहायता पहुँचाओगे।

(मणिभद्र से) विश्वासपात्र मणिभद्र, वे रत्न-खण्ड सर्वप्रथम तुम्हारे अधिकार में कब आए ?

मणिभद्र : सम्राट्, आज से दस दिन पूर्व।

समुद्रगुप्त : फिर तुमने उन्हें कहाँ सुरक्षित किया ?

मणिभद्र : इसी कक्ष में, सम्राट् !

समुद्रगुप्त : अंतरंग प्रकोष्ठ में क्यों नहीं ?

मणिभद्र : मुझे धवल कीर्ति से यह सूचना मिली थी कि मठ और प्रतिमा का कार्य सम्पूर्ण हो गया है और अब वे शीघ्र ही शिल्पियों को दे दिये जायेंगे, अतः अंतरंग प्रकोष्ठ में रखने की आवश्यकता नहीं है।

धवल कीर्ति : महासामन्त से मुझे यही आज्ञा मिली थी कि मैं शीघ्रातिशीघ्र मठ और प्रतिमा के निर्माण और उनकी व्यवस्था की चेष्टा करूँ। सिंहल द्वीप के भिक्षुओं को बोधगया में बड़ा कष्ट होता है, इसलिए उनकी सुविधा के लिए शीघ्रातिशीघ्र मठ का निर्माण होना था। सम्राट्, आपकी प्रशंसा नहीं की जा सकती कि आपने भागवत धर्म में विश्वास रखते हुए भी बोधगया में भिक्षुओं के लिए मठ बनवाने की आज्ञा दे दी।

समुद्रगुप्त : यह मेरी प्रशंसा का अवसर नहीं है, धवल कीर्ति ! तो मठ और प्रतिमा की शीघ्र व्यवस्था करने की प्रेरणा से ही तुमने मणिभद्र को अंतरंग प्रकोष्ठ में रत्न रखने से रोक दिया ?

धवल कीर्ति : हाँ सम्राट्, शिल्पी प्रतिमा-निर्माण का कार्य समाप्त कर चुके थे ? दो-एक दिन में ही भगवान् बुद्धदेव के चरणों में वे रत्न विजड़ित कर दिये जाते।

समुद्रगुप्त : दो-एक दिन का प्रश्न नहीं था। प्रश्न मणिभद्र के उत्तरदायित्व और कोष-संरक्षा का था। फिर वे रत्न शिल्पियों को दूसरे दिन दे दिये गये ?

मणिभद्र : नहीं सम्राट्, वे रत्न शिल्पियों को नहीं दिये जा सके। शिल्पियों को केवल पूर्व निश्चय के अनुसार चार सहस्र स्वर्ण-मुद्राएँ दी गई थीं।

समुद्रगुप्त : क्यों ?

मणिभद्र : उनका पारिश्रमिक चार सहस्र मुद्राएँ निश्चित किया गया था।

समुद्रगुप्त : तो कार्य समाप्ति से पूर्व ही उन्हें पारिश्रमिक क्यों दिया गया ?

मणिभद्र : धवल कीर्ति का आदेश था।

समुद्रगुप्त : **(धवल कीर्ति से)** क्यों धवल कीर्ति, तुम्हारा यह निर्देश सत्य है?

धवल कीर्ति : सत्य है सम्राट्, मैं उन शिल्पियों के कार्य से बहुत प्रसन्न था। वे अत्यन्त सात्विक प्रवृत्ति वाले हैं। मुझे विश्वास था कि वे पुरस्कार पाने के उपरान्त भी रत्न जड़ने का कार्य पूर्ण करेंगे।

समुद्रगुप्त : ऐसे कितने शिल्पी हैं ?

धवल कीर्ति : केवल दो हैं सम्राट् !

समुद्रगुप्त : उनके नाम ?

धवल कीर्ति : घटोत्कच और वीरबाहु।

समुद्रगुप्त : इस समय वे कहाँ हैं ?

धवल कीर्ति : वे अपने आवास-स्थान पर ही होंगे।

कोदण्ड : नहीं सम्राट्, वे इस समय बन्धन में हैं। जब से रत्नों की चोरी का समाचार प्रसिद्ध हुआ है तब से मैंने उन शिल्पियों को बन्दी कर रक्खा है। मैं उन्हें मणिभद्र के साथ ही ले आया था। वे बाहर हैं। यदि आज्ञा हो तो उन्हें सम्राट् की सेवा में उपस्थित करूँ।

समुद्रगुप्त : मैं तुम्हारी सतर्कता से प्रसन्न हूं महाबलाध्यक्ष ! यद्यपि मैं जानता हूँ कि शिल्पी निर्दोष हैं, फिर भी मैं उनसे विचार-विनिमय करना चाहूँगा। उन्हें मेरे समक्ष शीघ्र ही उपस्थित करो।

कोदण्ड : (सिर झुकाकर) जो आज्ञा ! (प्रस्थान)

समुद्रगुप्त : तो धवल कीर्ति, तुम शिल्पियों के कार्य से बहुत प्रसन्न हो ?

धवल कीर्ति : हाँ, सम्राट्, उन्होंने केवल एक मास में भगवान् की प्रतिमा का निर्माण कर दिया।

समुद्रगुप्त : उनके निर्माण-कार्य की कुछ विशेषता ?

धवल कीर्ति : सम्राट्, भगवान् की प्रतिमा इतनी सजीव ज्ञात होती है मानो वे संघ को उपदेश देने के अनन्तर अभी ही मौन हुए हैं। उनकी प्रतिमा का ओज अन्य धर्मावलम्बियों को भी बौद्ध-धर्म की ओर आकर्षित करने में समर्थ है।

समुद्रगुप्त : और बोधगया का मठ पूर्ण हो गया ?

धवल कीर्ति : हाँ सम्राट्, मठ भी पूर्ण हो गया। एक सहस्र भिक्षुओं के निवास के योग्य उसमें प्रबन्ध है और उसमें कला कुशलता की चरम सीमा उपस्थित की गई है।

समुद्रगुप्त : कला-कुशलता की चरम सीमा से क्या तात्पर्य है ?

धवल कीर्ति : सम्राट्, बुद्धदेव के जीवन के समस्त चित्र दीवारों पर अंकित हैं। महामाया का स्वप्न, गौतम का जन्म, शाक्य नरेश का सुखोत्सव, वैराग्य उत्पन्न करने वाले रोग, जरा और मृत्यु के चित्र, भगवान् गौतम का महाभिनिष्क्रमण, फिर उनकी तपस्या एवं उनके बोधिसत्व का रूप। संघ को उपदेश देते हुए उनके चित्रों में महान् ऐश्वर्य और विभूति है।

समुद्रगुप्त : और भिक्षुओं की सुविधा का क्या प्रबन्ध है ?

धवल कीर्ति : सम्राट्, प्रव्रज्या की समस्त सामग्री प्रत्येक कक्ष में संचित है। चीवर आदि की व्यवस्था देश के अन्य मठों से इसमें विशेष रहेगी। संक्षेप में अब किसी भी भिक्षु को लौकिक एवं पारलौकिक दृष्टि से किसी प्रकार की भी असुविधा नहीं हो सकती।

समुद्रगुप्त : तब तो मठ के समस्त शिल्पियों को राज्य की ओर से भी पुरस्कार प्रदान किया जायेगा, घटोत्कच और बीरबाहु को तो विशेष रूप से। धवल कीर्ति, पाटलिपुत्र में इन दोनों शिल्पियों को आवास कहाँ दिया गया था ?

धवल कीर्ति : जिस अतिथिशाला में मैं हूँ, उसी के समीप राज्य कुटीर में।

समुद्रगुप्त : तुमने रत्न-खंडों के सम्बन्ध में उनसे कभी चर्चा की थी ?

धवल कीर्ति : भगवान् बुद्ध की प्रतिमा के समाप्त होने के कुछ पहले ही मैंने भगवान् के चरण-अंगुष्ठ में स्थान छोड़ने की आज्ञा देते समय उनसे उन रत्नों की चर्चा की थी, किन्तु उनसे अधिक वार्तालाप कर अपना समय नष्ट करना मैंने कभी उचित नहीं समझा। आवश्यक आदेश के अतिरिक्त मैंने उनसे कभी कोई बात ही नहीं की।

समुद्रगुप्त : तुम सिंहल के प्रमुख कलाविद् हो, फिर कलाकारों से वार्तालाप करना समय नष्ट करना नहीं है, धवल कीर्ति !

धवल कीर्ति : सम्राट्, आप जैसे उत्कृष्ट कलाकार से वार्तालाप करना सौभाग्य की बात है, किन्तु सभी कलाकार मेरे समय के अधिकारी नहीं हैं।

समुद्रगुप्त : तुम भूल करते हो, धवल कीर्ति ! प्रत्येक कलाकार में कुछ न कुछ मौलिकता अवश्य होती है। कलाविद् को चाहिये कि कलाकार की उस मौलिकता का वह रत्नों की भाँति संग्रह करें।

[महाबलाध्यक्ष कोदण्ड का प्रवेश]

कोदण्ड : (प्रणाम कर) सम्राट् दोनों शिल्पी यहाँ उपस्थित हैं। आज्ञा हो तो उन्हे भीतर लाऊँ।

समुद्रगुप्त : यहाँ उपस्थित करो।

[महाबलाध्यक्ष का प्रस्थान]

समुद्रगुप्त : धवल कीर्ति, ये दोनों शिल्पी क्या सिंहल ही के निवासी हैं ?

धवल कीर्ति : हाँ सम्राट् ! इनका आदि स्थान तो सिंहल ही है किन्तु अपनी कलाप्रियता के कारण ये समस्त देश का पर्यटन करते हैं।

[महाबलाध्यक्ष कोदण्ड के साथ घटोत्कच और वीरबाहु का प्रवेश। वे प्रणाम करते हैं।]

कोदण्ड : (संकेत करते हुए) सम्राट्, यह शिल्पी घटोत्कच है और यह वीरबाहु।

समुद्रगुप्त : घटोत्कच और वीरबाहु, सिंहल के शिल्पी, किन्तु समस्त देश के अभिमान, राज्य में सौंदर्य की प्रतिष्ठा करने वाले प्रस्तर में प्राण फूंकने वाले ! तुम लोगों से राज्य की शोभा है। इसीलिए तुम किसी भी दण्ड-विधान से दण्डित नहीं हो सकते। क्यों शिल्पी ! सौंदर्य किसे कहते हैं ?

घटोत्कच : सम्राट्, विषय वस्तु में समता लाना ही सौंदर्य है।

समुद्रगुप्त : और तुम क्या समझते हो, वीरबाहु ?

वीरबाहु : हृदय में अनुराग की सृष्टि का साधन ही सुन्दरता है।

समुद्रगुप्त : यदि चोरी के प्रति हृदय में अनुराग है तो वह भी सुन्दरता है, शिल्पी ?

वीरबाहु : सम्राट्, यदि चोरी सात्विक भावों से होती है तो वह सुन्दरता कही जा सकती है।

समुद्रगुप्त : सात्विक भावों से कौन-सी चोरी होती है ?

वीरबाहु : कला, कविता और नारी हृदय की, सम्राट्, जिसमें निरीहता और पवित्रता है।

समुद्रगुप्त : और रत्न-खंडों की चोरी, शिल्पी ?

वीरबाहु : वह सुन्दरता नहीं है सम्राट्, रत्न-खंडों की चोरी में तृष्णा है। जिसका रूप दुःख है और फल पाप है।

समुद्रगुप्त : तुम्हें ज्ञात है कि सिंहल से भेजे गये रत्न-खण्ड चोरी चले गये ?

वीरबाहु : सम्राट्, मुझे इसकी सूचना महाबलाध्यक्ष से ज्ञात हुई। यही कारण है कि प्रातःकाल से हम लोगों की स्वतन्त्रता पर प्रतिबंध है। हमारी रक्षा कीजिये सम्राट् !

समुद्रगुप्त : तुम लोगों की पूर्ण रक्षा होगी शिल्पी, पहले मेरे प्रश्नों के उत्तर दो।

वीरबाहु : प्रश्न कीजिये, सम्राट् !

समुद्रगुप्त : तुम्हें दो सहस्र स्वर्ण-मुद्राएँ प्राप्त हो चुकी हैं ?

वीरबाहु : हाँ, सम्राट् !

समुद्रगुप्त : और घटोत्कच, तुम भी पुरस्कृत हो चुके हो ?

घटोत्कच : हाँ सम्राट् !

समुद्रगुप्त : तुम लोग कार्य समाप्ति के पूर्व ही पुरस्कृत क्यों हुए ?

घटोत्कच : धवल कीर्ति की प्रसन्नता ही इसका कारण है।

वीरबाहु : या हम लोगों की कार्य-कुशलता !

समुद्रगुप्त : क्या इस बात की संभावना हो सकती है कि उन दो सहस्र मुद्राओं में वे रत्न-खण्ड भी चले गये हों ?

घटोत्कच : सम्राट्, यदि रत्न-खण्ड उन स्वर्ण मुद्राओं में मिलते तो मैं मणिभद्र को इस बात की सूचना अवश्य देता।

वीरबाहु : सम्राट्, मेरा निवेदन तो यह है कि यदि मुझे दो सहस्र मुद्राओं से एक मुद्रा भी अधिक मिलती तो मैं वह मणिभद्र के पास भेज देता।

समुद्रगुप्त : इस बात का प्रमाण ?

घटोत्कच : सम्राट्, हृदय की निर्मलता का प्रमाण केवल निर्मल हृदय ही पा सकता है।

समुद्रगुप्त : क्यों शिल्पी, क्या तुम्हें मेरे हृदय की निर्मलता में विश्वास नहीं है ?

घटोत्कच : सम्राट्, हमें पूर्ण विश्वास है, इसीलिये आपसे निवेदन करना चाहते हैं। दूसरी बात यह है कि आज तक मैंने भगवान् बुद्धदेव की अनेक प्रतिमाओं का निर्माण किया है। भगवान् बुद्धदेव की प्रतिमा तथा उनके जीवन के अनेक चित्रों को अंकित करते-करते मेरे हृदय में—मेरी कला में—भी तथागत की प्रतिमा का निर्माण हो गया है। उनके आदर्श मेरे प्रत्येक श्वास में निवास करते हैं। उनके 'आर्य-सत्य' मेरी प्रत्येक यति और गति में संचारित हो गये हैं। ऐसी स्थिति में रत्न-खंडों की प्रभा मेरे चरित्र को कलंकित नहीं कर सकती।

समुद्रगुप्त : वीरबाहु, तुम्हारा क्या कथन है ?

वीरबाहु : सम्राट्, जो रत्न-खण्ड भगवान् बुद्धदेव के चरणों में स्थान पाने के लिए भेजे गए थे वे रत्न-खण्ड निर्जीव हैं और हम लोगों के हृदय सजीव। निर्जीवों में इतनी शक्ति नहीं है कि वे सजीवों की प्रकृति में बाधा डाल सकें। यदि आवश्यकता होगी तो रत्न-खंडों के स्थान पर हम लोग अपने हृदय भी विजड़ित करने के लिए प्रस्तुत होंगे।

समुद्रगुप्त : दोनों ही उच्च कोटि के कलाकार तथा शिल्पी हैं। घटोत्कच, बुद्धदेव की प्रतिमा का निर्माण हो गया है ?

घटोत्कच : सम्राट्, पिछले सप्ताह ही पूर्ण हो गया।

समुद्रगुप्त : फिर रत्न-खंडों को प्राप्त करने में इतना विलम्ब क्यों हुआ ?

घटोत्कच : सम्राट्, मैंने धवल कीर्ति से रत्न-खंडों के शीघ्र पाने की याचना की थी, किन्तु उन्हें अवकाश नहीं था।

समुद्रगुप्त : धवल कीर्ति को अवकाश नहीं था ! क्यों धवल कीर्ति ?

धवल कीर्ति : सम्राट्, मैं पाटलिपुत्र का उपासक हूँ। उसके सौन्दर्य को देखने की इच्छा अनेक वर्षों से मेरे हृदय में थी। मैं यहाँ आकर उसे अधिक से अधिक देखने का अवसर प्राप्त करना चाहता था, अतः मैं प्रायः आपके नगर के उद्यानों और सरोवरों ही में

अपने जीवन की अनुभूतियाँ प्राप्त करता था, किन्तु फिर भी शिल्पियों की आवश्यकता का ध्यान मुझे सदैव रहा करता था।

घटोत्कच : किन्तु गत सन्ध्या को जब मैंने आपकी सेवा में आने की चेष्टा की तो मुझे ज्ञात हुआ कि पाटलिपुत्र में आकर नृत्य-दर्शन की ओर आपकी विशेष अभिरुचि हो गई है। आप नृत्यों की विशेष भाव-भंगिमाओं के चित्र संग्रह में इतने व्यस्त रहते हैं कि आपको मेरी प्रार्थनाओं के सुनने का अवकाश नहीं था।

धवल कीर्ति : घटोत्कच, मेरी रुचि की समालोचना करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है।

समुद्रगुप्त : शान्त, धवलकीर्ति, मुझे यह सुनकर प्रसन्नता है कि तुम्हें नृत्य-कला विशेष प्रिय है। तुमने पाटलिपुत्र की राजनर्तकी का नृत्य, सम्भव है, अभी तक न देखा हो। वह भी मैं तुम्हें दिखलाने का प्रयत्न करूँगा।

धवल कीर्ति : सम्राट्, आपकी विशेष कृपा है।

समुद्रगुप्त : मैं उसे अभी दिखलाने का प्रबन्ध करूँगा। मेरा नृत्य देखने का समय भी हो गया। **(महाबलाध्यक्ष से)** कोदण्ड, तुम इन शिल्पियों को न्याय-सभा की उत्तर-शाला में स्थान दो। **(शिल्पियों से)** शिल्पी घटोत्कच और वीरबाहु, तुम्हारे उत्तरों से मैं प्रसन्न हुआ। राजकीय नियमों के आचरण में यदि शिल्प-साधकों को कुछ असुविधा हो तो वह उपेक्षणीय है। तुम ध्यान मत देना शिल्पी!

वीरबाहु : सम्राट् की जो आज्ञा।

धवल कीर्ति : मुझे कोई असुविधा नहीं है सम्राट्!

समुद्रगुप्त : तो तुम लोग जाओ, राज-शिल्पियों को किसी प्रकार की असुविधा नहीं होनी चाहिए।

कोदण्ड : जो आज्ञा, सम्राट्!

समुद्रगुप्त : और सुनो, कोदण्ड, राजनर्तकी रत्नप्रभा को इसी स्थान पर आने की सूचना दो। आज मैं धवल कीर्ति के साथ इसी स्थान पर राजनर्तकी का नृत्य देखूंगा।

[कोदण्ड और शिल्पी जाने के लिए उद्यत होते हैं।]

समुद्रगुप्त : और सुनो, प्रियदर्शिका से कहना कि वह मेरी वीणा ले आये। आज मैं फिर बजाना चाहता हूँ। केदारा के स्वरों का सन्धान हो !

कोदण्ड : जो आज्ञा !

[कोदण्ड और शिल्पियों का प्रस्थान]

समुद्रगुप्त : (**मणिभद्र से**) मणिभद्र, दुर्भाग्य से यदि तुम्हारी अन्तिम रात्रि हो, तो तुम्हें अपने सम्राट् की वाणी सुनने का अवसर क्यों न मिले ? तुम भी सुनो।

मणिभद्र : यह मेरा सौभाग्य है सम्राट् !

धवल कीर्ति : सम्राट्, फिर मुझे आज्ञा दीजिये।

समुद्रगुप्त : क्यों धवल कीर्ति, क्या तुम हमारी वीणा नहीं सुनोगे और राजनर्तकी का नृत्य नहीं देखोगे ? तुम तो बड़े भारी कलाकार हो !

धवल कीर्ति : सम्राट्, प्रशंसा के लिए धन्यवाद। मैं सोचता हूँ कि कला की उपासना के लिए पवित्र मन की आवश्यकता है। मेरा मन इस घटना से बहुत अव्यवस्थित हो गया है।

समुद्रगुप्त : मैं अपनी वीणा से तुम्हारा हृदय व्यवस्थित कर दूंगा। फिर आज इस वादन और नृत्य को तुम मणिभद्र की विजय-विदा समझो। जिस मणिभद्र ने पच्चीस वर्षों तक राज्य की सेवा की है, उसके अन्तिम क्षणों को मुझे अधिक से अधिक सुखमय बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। इस मंगल-वेला के समय तुम्हें भी उपस्थित रहना चाहिये। पाटलिपुत्र के न्यायाचरण में सिंहल का भी प्रतिनिधित्व हो।

धवल कीर्ति : सम्राट्, आपका कथन सत्य है, किन्तु मैं समझा, सम्भवतः आप एकान्त चाहते हैं।

समुद्रगुप्त : नहीं धवल कीर्ति, ऐसे समारोहों में एकान्त टूटे हुए तार की तरह अत्यन्त कष्टदायक है !

धवल कीर्ति : (संभलकर) और सम्राट्, आपकी वीणा में वह स्वर है जो टूटे हुए हृदयों को भी जोड़ देता है। आप संगीत-कला में नारद और तुम्बुरु को भी लज्जित करते हैं। आपकी संगीत प्रियता इसी बात से स्पष्ट है कि आपकी मुद्राओं पर वीणा बजाती हुई राम मूर्ति अंकित है। मैंने सुना है कि आपने अपने अश्वमेध यज्ञ के उपरान्त दो मास तक संगीतोत्सव किया था !

समुद्रगुप्त : यह सरस्वती की साधना करने की सबसे सरल युक्ति है। अच्छा धवल कीर्ति, तुम भी तो संगीत जानते हो ?

धवल कीर्ति : सम्राट्, आपकी साधना की समानता कौन कर सकता है, किन्तु इस कला की ओर मेरी अभिरुचि अवश्य है।

समुद्रगुप्त : और नृत्य-कला भी तो जानते होंगे ?

धवल कीर्ति : सम्राट्, नृत्य-कला का मैंने अध्ययन मात्र किया है। उसकी विवेचना कर सकता हूँ, किन्तु स्वयं नृत्य नहीं कर सकता।

समुद्रगुप्त : नृत्य-कला देखने से प्रेम है ?

धवल कीर्ति : यह सिंहल के वातावरण का प्रभाव है।

समुद्रगुप्त : मुझे प्रसन्नता है कि सिंहल का वातावरण मेरी अभिरुचि के अनुकूल है। फिर तो राजनर्तकी के नृत्य से तुम्हें विशेष प्रसन्नता होगी।

धवल कीर्ति : यह सम्राट् का अनुग्रह है।

समुद्रगुप्त : और मेरी वीणा के स्वर भी आज मुखरित होंगे।

धवल कीर्ति : आपकी वीणा तो स्वर्गीय संगीत है, सम्राट्।

समुद्रगुप्त : अधिक नहीं, धवल कीर्ति ! किन्तु संगीत ईश्वरीय विभूति की

वह किरण है जिससे मनुष्य देवता हो जाता है। हृदय का समस्त कालुष्य वीणा की एक झंकार से ही दूर हो जाता है।

[प्रियदर्शिका का वीणा लिए हुए प्रवेश। वह प्रणाम करती है।]

समुद्रगुप्त : आओ प्रियदर्शिके, आज मैं फिर वीणा बजाऊँगा।

प्रियदर्शिका : (वीणा आगे प्रस्तुत कर) प्रस्तुत है सम्राट् !

समुद्रगुप्त : (वीणा हाथ में लेते हुए) केदारा के स्वरों में वीणा का सन्धान है ?

प्रियदर्शिका : सम्राट्, इसी राग की आज्ञा प्राप्त हुई थी।

समुद्रगुप्त : राजनर्तकी रत्नप्रभा का शृंगार पूर्ण हुआ ?

प्रियदर्शिका : वे तैयार हैं, आपकी सेवा में उपस्थित होने की आज्ञा चाहती हैं !

समुद्रगुप्त : उन्हें नृत्य के साथ आने दो, केदारा स्वरों में !

प्रियदर्शिका : (सिर झुकाकर) जो आज्ञा ! (प्रस्थान)

समुद्रगुप्त : (वीणा के तारों पर उंगलियां फेरते हुए) सुनो धवल कीर्ति, केदारा के स्वर में वह भावना है कि करुणा की समस्त मूर्छनाएँ एक बार ही हृदय में जाग्रत हो जाती हैं। ऐसा ज्ञात होता है जैसे सारा संसार तरल होकर किसी की आंखों से आंसू बनकर निकलना चाहता है। तारिकाएँ आकाश की गोद में सिमट कर पतली किरणों में प्रार्थना करने लगती हैं। कलिकाएँ सुगन्धि की वेदना से फूल बन जाती है और बिन्दु में डूबकर पृथ्वी के चरणों में आत्म-समर्पण करना चाहती हैं। अच्छा, तो सुनो वह रागिनी !

[समुद्रगुप्त वीणा पर केदारा का स्वर छेड़ते हैं। धीरे-धीरे बजाते हुए वे तन्मय हो जाते हैं। उसी क्षण रत्नप्रभा का नृत्य करते हुए प्रवेश ! रत्नप्रभा के अंग-अंग से रागिनी की गति व्यक्त हो रही है। वह अट्ठारह वर्षीया सुन्दरी है। सौन्दर्य की रेखाओं ही में उसके शरीर की आकृति है। केश-कलाप में पुष्पों की मालाएँ, शरीर में अंग राग और चन्दन की चित्र-रेखाएँ हैं।

मस्तक पर केसर का पुष्पांकन। बीच में कुमकुम का बिन्दु। नेत्र-कोरों में अंजन की रेखा। चिबुक पर कस्तूरी बिन्दु। कंठ में मुक्ताहार। हृदय पर रत्न राशि। कटि में दोलायमान किंकणी और पैरों में नूपुर। वह केदारा राग की साकार प्रतिमा बनकर नृत्य कर रही है। साथ ही सम्राट् समुद्रगुप्त की वीणा से निकलती हुई रागिनी राज-नर्तकी के पद-विन्यास में माधुर्य भर रही है। कुछ समय नृत्य करने के उपरान्त 'सम' पर राजनर्तकी हाथ जोड़कर भाव-मुद्रा में सम्राट् के समक्ष तिरछी होकर खडी हो जाती है।]

समुद्रगुप्त : **(प्रसन्न होकर)** मेरे राज्य की उर्वशी, तुम बहुत सुन्दर नृत्य करती हो।......यह पुरस्कार......

[गले से मोती की माला उतार कर देते हैं।]

रत्नप्रभा : **(हाथ जोड़कर)** सम्राट्, मैं इसके योग्य नहीं हूँ। मुझसे आज दो बहुत बड़े अपराध हुए हैं।

समुद्रगुप्त : **(भ्रान्त होकर)** तुमसे कभी कोई अपराध नहीं हुआ! कौन सा अपराध?

रत्नप्रभा : पहला अपराध तो यह है कि मैं आपकी मधुर वीणा के अनुकूल नृत्य नहीं कर सकी! आपके संगीत की मर्यादा कभी भंग नहीं हुई। आज मेरे नृत्य के कारण आपका संगीत कलुषित हो गया सम्राट्!

समुद्रगुप्त : नहीं रत्नप्रभा, अपने नृत्य से तुमने मेरे स्वरों में सहायता ही पहुँचाई है, हानि नहीं!

रत्नप्रभा : सम्राट्, मैं अनुग्रहीत हूँ। आपने कभी मेरे नृत्य के साथ वीणा नहीं बजाई। आज आपने मेरे नृत्य को अनंत गौरव प्रदान किया है।

समुद्रगुप्त : यह कला की साधना में आवश्यक है! अच्छा दूसरा अपराध कौन-सा है?

रत्नप्रभा : सम्राट् आज आपने इतनी मधुर वीणा बजाई कि संगीत की इस दिव्य अनुभूति में मेरे हृदय का समस्त दोष दूर हो गया और आज मैं अपना अपराध स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत हूँ!

समुद्रगुप्त : मैं उत्सुक हूँ सुनने के लिए, रत्नप्रभा !

रत्नप्रभा : सम्राट्, राजनर्तकी होकर मैंने एक अन्य व्यक्ति से भेंट स्वीकार की !

समुद्रगुप्त : (उत्सुकता से) किससे ?

धवल कीर्ति : (शीघ्रता से) मुझ से सम्राट् ! सिंहल के राजदूत धवल कीर्ति से ।

समुद्रगुप्त : तो इसमें कोई हानि नहीं । तुम तो हमारे राज्य के अतिथि हो, तुमसे भेंट स्वीकार करने में कोई हानि नहीं है ।

रत्नप्रभा : फिर भी सम्राट्, अन्य राज्य के व्यक्ति की भेंट स्वीकार करने की आज्ञा मेरी आत्मा मुझे नहीं देती । उनकी यह भेंट आप ही के चरणों में समर्पित करती हूँ । और वह यह है ।

[सम्राट् के चरणों में दो हीरक-खण्ड समर्पित करती है ।]

मणिभद्र : (हीरक खंडों को देखकर प्रसन्नता से) वे हीरक-खण्ड यही हैं; यही हैं ! (उद्वेग से) महाराज प्रायश्चित नहीं करेंगे ! महाराज प्रायश्चित नहीं करेंगे !

समुद्रगुप्त : (रत्नों को हाथ में लेकर) ठहरो-ठहरो ! मणिभद्र ! प्रसन्नता से पागल मत बनो । (धवल कीर्ति से) राजदूत धवल कीर्ति, क्या यह सत्य है ?

[धवल कीर्ति, लज्जा से नीचे सिर करके मौन हैं ।]

समुद्रगुप्त : बोलो राजदूत ! क्या तुम इसी आचरण से राजदूतत्व का निर्वाह करते हो ?

धवल कीर्ति : सम्राट्, मैं लज्जित हूँ !

समुद्रगुप्त : राजदूत, मुझे तुम पर पहले ही कुछ शंका हो रही थी । मणिभद्र की आत्महत्या के विचार पर तुम मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे, राजमहिषी कुमारिला के कंठहार के रत्नों की पवित्रता का सन्देश जतलाकर तुम राज्याधिकार को लांछित करना

चाहते थे, तुम इसीलिए शिल्पियों पर प्रसन्न हुए कि वे रत्न-खंडों के लिए अधिक जिज्ञासा न करें, तुम रत्नप्रभा के नृत्य के पूर्व ही चले जाना चाहते थे, जिससे तुम रत्नप्रभा के समक्ष दोषी होने से बच सको। मैंने इसीलिए आज वीणा बजाई जिससे संगीत के वातावरण में अपराधी विह्वल हो जाय और अपना रहस्य खोल दे। नहीं तो मर्यादा के संकट में संगीत की क्या आवश्यकता? मेरे ही राज्य में आकर विष का बीज बोना चाहते हो? बोलो, तुम्हें क्या दण्ड दिया जाय?

धवल कीर्ति : सम्राट् जो चाहें मुझे दण्ड दें!

समुद्रगुप्त : तुम जानते हो धवल कीर्ति, राजदूत दण्डित नहीं होता, इसीलिए तुम निर्भीकता से कहते हो, सम्राट् जो चाहें मुझे दण्ड दें। किन्तु तुम यह ठीक तरह से समझ लो कि समुद्रगुप्त पराक्रमांक न्याय को देवता मानकर पूजता है और अन्याय को दैत्य समझ कर उसका विनाश करता है। मैं अपने महासामन्त सिरिमेघ-वन्त से तुम्हारे दण्ड की व्यवस्था कराऊँगा। तुमने राजमहिषी कुमारिला के रत्न-खंडों को स्वयं कलुषित किया है, मणिभद्र के प्राण संकट में डाले हैं, राजनर्तकी को मर्यादा के पथ से विचलित करने का प्रयत्न किया है। दण्ड तुम्हें पाकर सुखी होगा।

धवल कीर्ति : सम्राट् मुझे अधिक लज्जित न कीजिये। मैं स्वयं परिताप की अग्नि में जल रहा हूँ।

समुद्रगुप्त : उस परिताप की अग्नि के प्रकाश में क्या स्पष्ट कर सकते हो कि ये रत्न-खंड तुमने मणिभद्र की संरक्षा से किस प्रकार मुक्त किये?

धवल कीर्ति : अपने अन्तिम समय में मैं असत्य भाषण नहीं करूँगा, सम्राट्! आपको अभी ज्ञात हुआ कि शिल्पियों की कार्य समाप्ति के पूर्व ही शिल्पियों को मैंने प्रसन्न हो निश्चित पारिश्रमिक दे

दिया और वह इसलिए कि जब मेरे सामने मणिभद्र उन्हें देने के लिए स्वर्ण-मुद्राएँ गिने तो मैं मणिभद्र का ध्यान सिंहल की मुद्राओं की विशेषताओं की ओर बार-बार आकर्षित करूँ। ऐसे ही किसी अवसर पर मैं वे रत्न-खंड दृष्टि बचाकर मंजूषा में से निकाल लूँ। अपने कार्य की सरलता के कारण ही मैंने उन रत्नों को भांडागार के भीतरी प्रकोष्ठ में न रखने का परामर्श मणिभद्र को दिया।

समुद्रगुप्त : फिर रत्नप्रभा को तुमने किस विचार से ये रत्न भेंट किये ?

धवल किर्ति : मैंने उससे नृत्य करने की प्रार्थना की, किन्तु उसने कहा कि मैं सम्राट् की आज्ञा के बिना किसी दूसरे के समक्ष नृत्य नहीं करूँगी। मैंने बार-बार प्रार्थना की और उसकी सुन्दरता के अनुरूप ही हीरक-खंडों की भेंट की। उसने मौन होकर वे रत्न खण्ड ले लिये, न जाने क्या सोचकर और क्या समझकर।

समुद्रगुप्त : फिर रत्नप्रभा ने तुम्हारे सामने नृत्य किया ?

धवल कीर्ति : नहीं सम्राट् ! उसने फिर भी अस्वीकार किया।

समुद्रगुप्त : रत्नप्रभा, मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। अब स्वीकार करो अपना यह पुरस्कार।

[हाथ में रखी हुई माला देते हैं।]

रत्नप्रभा : (माला लेकर सिर झुका कर) सम्राट् आपकी प्रसन्नता में ही मेरे पुरस्कृत होने की सार्थकता है।

समुद्रगुप्त : मेरे सम्राज्य में इस प्रकार का अन्याय नहीं हो सकता, इसी बात से मैं सुखी हूँ।

धवल कीर्ति : सम्राट्, मुझे और किसी प्रश्न का उत्तर देना है ?

समुद्रगुप्त : नहीं, अब केवल महासामन्त को सूचना देनी है कि राजमहिषी के रत्न-खंडों को भगवान् बुद्ध देव की श्रद्धा में समर्पित न कर राजनर्तकी को भेंट करने के अपराध में जो दण्ड-व्यवस्था हो उसका प्रबन्ध करें।

धवल कीर्ति : सम्राट्, आप उन्हें सूचना देने का कष्ठ न उठाएँ। मैंने मणिभद्र के साथ विश्वासघात किया, राजमहिषी के हीरक-खंडों को कलुषित किया, राजनर्तकी को मर्यादा से विचलित करने की चेष्टा की, और सम्राट् आपके प्रायश्चित करने का अवसर उपस्थित किया। इन सबका सम्मिलित दण्ड बहुत भयानक है। यदि मुझे सौ बार प्राण दण्ड दिया जाय, तब भी वह पर्याप्त नहीं है। मैं अपनी ओर से सबसे बड़ा दण्ड स्वयं अपने को दे रहा हूँ और वह है आत्महत्या।

[कटार अपने हृदय में मार लेता है और सम्राट् के समक्ष ही गिर पड़ता है। मणिभद्र और राजनर्तकी के मुख से आश्चर्य और दुःख की ध्वनि।]

समुद्रगुप्त : स्वयं दण्डित होने से अब तुम अपराधों से मुक्त हुए धवल कीर्ति तुमने अपने नाम को धवल ही रहने दिया।

धवल कीर्ति : **(अस्फुट स्वरों में)** मैं······राजमहिषी को ····अपना मुख ······नहीं······दिखला सकता था······सम्राट्, मेरी······ कला की······उपासना······असत्य है। मुझे······शान्ति से······मरने······दें आपका······संगीत।

समुद्रगुप्त : हाँ, धवल कीर्ति ! मैं तुम्हें संगीत सुनाऊँगा। राजनर्तकी, तुम नृत्य करो ! सच्चे अपराधी की मृत्यु को मङ्गलमय बनाओ। मणिभद्र के स्थान पर धवल कीर्ति को विजय विदा दो। मैं भी वीणा-वादन करूँगा। शिल्पियों को मुक्त कर यहाँ आने का निमंत्रण दो। आज धवल कीर्ति के मृत्यु-समय मेरा मंगलवाद्य सुनें। राजनर्तकी, नृत्य शीघ्र प्रारम्भ हो।

[राजनर्तकी नृत्य करने के लिए प्रस्तुत होती है और सम्राट् समुद्रगुप्त अपने हाथ में वीणा लेकर स्वर छेड़ते हैं। परदा गिरता है।]

●

समुद्रगुप्त पराक्रमांक : नाटक-परिचय

'समुद्रगुप्त पराक्रमांक' एक ऐतिहासिक नाटक है। केवल इतिहास की कथावस्तु पर आधारित होने से या ऐतिहासिक चरित्रों से संबंधित होने से कोई नाटक ऐतिहासिक नहीं होता। उसमें इतिहास के संबद्ध युग को फिर से जीवित करने की विशेषता होनी चाहिए। प्रस्तुत नाटक में भारत-सिंहल संबंधों और इस देश के राजाओं के अन्य धर्म प्रेम का चित्रण हुआ है और इस प्रकार भारतीय परम्परा को विशिष्ट ऐतिहासिक प्रसंग में उजागर किया गया है।

इतिहास में समुद्रगुप्त को केवल एक सफल विजेता के रूप में स्मरण किया जाता है। उनके अंतरंग चरित्र का एक और चित्र यह नाटक प्रस्तुत करता है। सिंहल की राजमहिषी कुमारिला द्वारा भेंट किए गए दो रत्न-खण्ड उसी देश के राजदूत धवल कीर्ति द्वारा निजी लाभ के लिए प्रयुक्त होते हैं। सम्राट् की तेज आँख, तर्क और कलात्मक सूझ से षड्यंत्र फूट जाता है और राजदूत यह अप्रिय स्थिति सह न पाने के कारण आत्महत्या की शरण लेता है।

इस नाटक में राजदरबार के उस कक्ष का चित्र प्रस्तुत किया गया है जो इतिहासकार के मतलब का नहीं होता। इस बात के कई प्रमाण मिलते हैं कि संगीत का शास्त्रसिद्ध वादन या गायन जड़ और चेतन पदार्थों को भी अनुकूल आचरण करने को प्रेरित करता है। गंभीर समस्या के आ पड़ने पर संगीत तथा नृत्य का आयोजन करके सम्राट् वातावरण को निश्छल तथा पवित्र बनाने का उपक्रम करते हैं जिससे फिर अपराध स्वयं ही प्रकट हो जाता है।

समुद्रगुप्त पराक्रमांक : सहायक सामग्री

1. भांडागार—राजकोष। नाटक का पूरा दृश्य राजकोष के बाहरी कक्ष में घटता है। सम्राट् समुद्रगुप्त रत्नों की चोरी का समाचार सुनकर घटना-स्थल पर ही चले आए हैं। उनके आस-पास महाबलाध्यक्ष, भांडागार के अधि-

करण तथा सिंहल के राजदूत खड़े हैं। इससे स्पष्ट है कि घटना बड़ी गंभीर है। नाटक का आरंभ घटना के मर्मस्थल से हुआ है।

2. **पाटलिपुत्र**—गुप्त साम्राज्य की राजधानी। इस साम्राज्य की नींव चंद्रगुप्त प्रथम (शासन काल 320-330 ई०) ने डाली, पर समुद्रगुप्त ने अपने शासन काल में (330-375 ई०) इसे वास्तविक विस्तार दिया। समुद्रगुप्त के पुत्र चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ने फिर उज्जैन को दूसरी राजधानी बनाया।

3. **अश्वमेध यज्ञ**—उत्तर भारत के नौ राज्यों, दक्षिण भारत के बारह राज्यों, मध्य भारत के अठारह राज्यों को जीतकर तथा पूर्व में असम के राजाओं को बिना लड़े अधीन बनाकर सम्राट् समुद्रगुप्त ने अश्वमेध यज्ञ रचाया। यह यज्ञ किसी राजा के चक्रवर्ती सम्राट् होने के उपलक्ष्य में होता था तथा इसमें अपने चारों ओर के क्षेत्र में सुसज्जित तथा सेना-समर्थित घोड़ा छोड़ दिया जाता था। जीवित अश्व तथा विजयी सेना के लौट आने पर अश्व की बलि से यज्ञ की पूर्णाहुति होती थी।

4. सिंहल बौद्ध देश था यद्यपि यह आज भी बहुमत की दृष्टि से बौद्ध है। वहाँ के नाम संस्कृत के या पालि भाषा के हैं। महासामन्त सिरिमेघवन्त 'श्री मेघवन्त' हो सकता है। धवल कीर्ति, घटोत्कच तथा वीरबाहु नितान्त भारतीय नाम लगते हैं।

5. **प्रायश्चित**—कोई शास्त्रीय कर्म जिसके करने से पाप छूट जाता है। अज्ञात् चोर के बदले स्वयं कष्ट उठाकर प्रायश्चित करने के प्रस्ताव से सम्राट् के चरित्र की विशालता प्रकट होती है।

6. **संघ**—बुद्ध के अनुयायियों का संगठन। बौद्ध बनने के लिए 'संघ शरणं गच्छामि' मंत्र का उच्चारण संघ का महत्त्व बताता है।

7. **भिक्षु**—बौद्ध धर्म प्रचारक। बोधगया में सहस्र भिक्षुओं के लिए निवास स्थान बनवाने के लिए सिंहल के राज्य द्वारा धन दिया गया था।

8. **महामाया**—गौतम बुद्ध की माता। शाक्य नरेश गौतम के पिता थे। गौतम के पत्नी और पुत्र को छोड़कर घर से नि‌ालने को 'महाभिनिष्क्रमण' कहा जाता है।

9. समुद्रगुप्त जितने बड़े योद्धा थे उतने ही अच्छे कलाकार तथा कला का सम्मान करने वाले भी थे। धवल कीर्ति की कला-उपेक्षा वास्तव में उसकी अपराध छिपाने की कोशिश है।

10. तथागत—गौतम बुद्ध। बौद्ध सिद्धान्तों में संसार का सबसे बड़ा तथा निश्चित सत्य अर्थात् 'आर्यसत्य' दुःख है।

11. नृत्य में मनोभावों को मुख की तथा अन्य अंगों की मुद्राओं से प्रकट किया जाता है। अंग को विशेष कोणों पर भंग करके जो हाव-भाव प्रकट किए जाते हैं उन्हें भंगिमाएँ कहते हैं।

12. केदारा—प, ध तथा म स्वरों वाला यह राग मूलतः शृंगार रस-प्रधान है पर करुण रस की भी उत्पत्ति करता है। शृंगार के वियोग पक्ष को उजागर करने से समुद्रगुप्त वातावरण को करुणा से भरकर शुद्ध तथा निश्छल बनाना चाहते हैं। संगीत के रागों में चेतन मनुष्य को ही नहीं, अन्य जीव-जंतुओं तथा जड़ पदार्थों को भी अनुकूल आचरण कराने को प्रेरित करने की शक्ति होती है।

13. नारद—वीणा बजाने में अनुपम, पौराणिक देवता। तुंबुरु दक्षिणी कर्णाटक संगीत के जन्मदाता बताए जाते हैं।

14. राजदूत दूसरे देश का प्रतिनिधि होता है अतः उसे दण्ड नहीं दिया जा सकता। यह नियम गुप्त राज से बहुत पहले से प्रचलित था। रामायण तथा महाभारत काल में इसका उल्लेख है। आज अतर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार भी यह नियम मान्य है।

15. धवल कीर्ति अपराध के खुल जाने से काफी खिन्न है और पश्चात्ताप की अग्नि में जल रहा है। अंत में आत्महत्या करके दोष से मुक्त होने का प्रयास करता है। सम्राट् उसके इस बलिदान से प्रभावित होते हैं तथा उसके नाम 'धवल कीर्ति' (शब्दार्थ: जिसने निष्कलंक यश पाया हो) को सच हुआ मानते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) बोध :

१. सम्राट् समुद्रगुप्त का चरित्र-चित्रण कीजिए।

२. रत्नों की चोरी के अपराधी धवल कीर्ति के इस कर्म को आप उचित बताते हैं कि अनुचित, जो उसने अपनी कला की प्यास बुझाने के लिए किया।

३. संगीत अपराधी के पापी मन को भी धो सकता है—क्या आप संगीत के किसी अन्य प्रभाव के बारे में जानते हैं ?

४. इतिहास की पुस्तक से सहायता लेकर सम्राट् समुद्रगुप्त की विजयों पर एक छोटा निबंध लिखिए।

(ख) विवरणात्मक अध्ययन

प्रसंग देकर व्याख्या कीजिए :

(क) यह आश्चर्य ही मुझे······नहीं पाये गये।

(ख) सम्राट्, बुद्धदेव के जीवन के······ऐश्वर्य और विभूति है।

(ग) तुम भूल करते हो······रत्नों की भाँति संग्रह करे।

(घ) अधिक नहीं धवल कीर्ति······दूर हो जाता है।

(ङ) तुम जानते हो······तुम्हें पाकर सुखी होगा।

भुवनेश्वर

परिचय :

इनका जन्म १९१४ ई० में हुआ। इनको आधुनिक एकांकी का जनक माना जाता है।

विद्वानों का कथन है कि भुवनेश्वर के एकांकी भारतीय परम्परा से अधिक पश्चिमी परम्परा से प्रभावित हैं। पाश्चात्य नाटकों के अध्ययन ने ही इन्हें हिन्दी में एकांकी लिखने की ओर प्रेरित किया था। इसी कारण कुछ आलोचकों ने इनके नाटकों में बहुत अधिक पाश्चात्य प्रभाव खोजने की कोशिश की है। इनके कुछ नाटकों को बर्नार्ड शॉ के नाट्य-लेखन से प्रभावित बतलाया जाता है। भुवनेश्वर जी चाहे जिससे भी प्रभावित रहे हों, इनके एकांकियों के अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि ये इनकी मौलिक उपज हैं और अपने नाटकों में इन्होंने भारतीय जीवन से बाहर की परिस्थितियों को स्थान नहीं दिया है।

इनके अधिकांश नाटक स्त्री और पुरुष के सम्बन्धों की समस्या पर आधारित हैं। इनकी समस्याएँ चरित्रों के पारस्परिक व्यवहार तथा अन्य हल्के- हल्के संकेतों से ही पाठकों के सामने उभरकर आ जाती हैं। भुवनेश्वर जी बड़े-बड़े संवाद तथा लम्बे-लम्बे विवरण देने में विश्वास नहीं रखते वरन् साधारण जीवन के ऐसे चित्र सामने रख देते हैं जो अपने में ही अर्थपूर्ण होते हैं। इन गुणों के कारण इन्हें मानवीय प्रतिक्रियाओं का नाटककार भी कहा जाता है।

अकाल-मृत्यु के कारण भुवनेश्वर जी हिन्दी एकांकी साहित्य को उतना नहीं दे पाये जितना कि इनसे आशा की जा सकती थी। जितने एकांकी उन्होंने लिखे हैं वे आज भी उतने ही आधुनिक हैं जितने कि लिखे जाने के समय थे।

इनका एक ही एकांकी संग्रह 'कारवां' प्रकाशित हुआ है।

ऊसर

(रंग-नाटक)

चरित्र

लड़का

गृहस्वामी

युवक

मोटी रमणी

गृह स्वामिनी

छोटी लड़की

दो लड़कियाँ

एक ट्यूटर

[एक मध्यम वर्ग के बंगले का ड्राइंग-रूम। कमरा छोटा और नीचा पटा है। दीवारें सादी हैं, पर कुछ तसवीरें आज ही टाँगी गई हैं, जो कीलें गाड़ने के ताज़े निशानों से मालूम होता है। दो दरवाज़ों और तीन खिड़कियों पर पर्दे पड़े हैं, वे रोज ही पड़े रहते हैं; आज सिर्फ खिड़कियों के पर्दों के नीचे की फटी हुई कोरें तुरप दी गई हैं। भीतर के दरवाज़े पर जाली का कटा हुआ पर्दा है, जिसके लगाने के निशान मैले और पुराने हैं। कार्निस पर बहुत सी तसवीरें और कुछ बड़े घोंघे और शंख रखे हैं। एक 'प्लास्टर ऑफ़ पेरस' का गांधी का बस्ट भी है। फर्नीचर कमरे के लिए कुछ ज्यादा, और अक्सर बे-मेल है—गहरी नीली सुइट पर दो हरे कुशन हैं, एक बरेली वुड-वर्क्स का भी सुइट है जिस पर रेशम से एक बड़ी बत्तख काढ़ी हुई है; काली बैंचें पड़ी हैं; कुछ बेंत की कुर्सियाँ हैं जो नंगी हैं और भीतर के दरवाज़े के सामने पड़ी हैं—ऐसी कि बिना उनको हटाए कोई भीतर से आ-जा नहीं सकता। बाहर का ताज़ा धुला हुआ बरामदा कमरे से दिखाई देता है, जहाँ पायदान पर एक भूरा बेकनीज दहलीज पर सर रखे सो रहा है और एक किरमिच की कुर्सी एक युवक हाथों को जंगलों में भींचे टाँगे हिलाता हुआ, पोर्च में खड़ी बड़ी गीली कार की तरफ बड़ी देर से, करीब-करीब जब से वह लाल सुरखी को ढलती हुई और अपने बेलुन टायरों से छोटी-छोटी कंकड़ियाँ उड़ाती हुई आई है—देख रहा है। दिसम्बर की शाम कुछ-कुछ गाढ़ी हो चली है।

सहसा भीतर के दरवाज़े से एक आठ बरस का लड़का त्यौहारी कपड़े पहने एक कुर्सी को ढकेलता आता है। बरामदे में कुत्ता और युवक दोनों चौंक पड़ते हैं। कुत्ता एक बार समझदारी से गुर्राकर फिर सिर टिका देता है और युवक तनिक अपराधी सा मोटर से नज़र हटा लेता है। लड़का सीधा कुत्ते के पास जाता है, उसका एक पैर

का हौज सरककर नीचे आ गया है, जिससे उसकी सफेद बेराठी पिंडली दिखाई दे रही है।]

लड़का : **(कुत्ते को जूते से सहलाते और अंगुली चटाते हुए)** मेरा पिप्पा ! तुम्हें कोई नहीं पूछता, तुम अकेले पड़े हो, मेरा बू-बी ! **(वहीं बैठ जाता है, कुत्ता वैसे ही आँखें बन्द किए कान और दुम हिलाता है)** तुम मैले हो……देखो चुपके से जब सब सो जायँ, तो तुम हमारे बिस्तर पर आ जाना, हम तुम तो भाई-भाई हैं। हम, तुम, ह……ह ! **(कुत्ते को उठाता सा है।)**

[भीतर वाले दरवाजे से कुर्सियों को ढकेलते हुए एक अधेड़ आदमी का प्रवेश। उसके चारों ओर गृह-स्वामी का हठ है। वह आते ही कुछ जोर से कहना चाहता है, पर उसका कर्रा इस्तरी किया सूट, खर्चीली काट के बाल अनजाने उसे रोक देते हैं। लड़का कुत्ते को एक बारगी छोड़ कर कमरे में आ जाता है, पर कुत्ता भी एक आकस्मिक साहस से बच्चे की टांगों से चिपटकर खेलने लगता है।]

गृहस्वामी : **(दियासलाई से दाँत कुरेदते हुए)** यह क्या बद-तमीजी है। भीतर मेहमान आये हैं। तुम यहाँ कुत्ते के साथ शरारत कर रहे हो। **(कुर्सियाँ देखते हुए)** और यह सब कुर्सियाँ क्यों बर-बाद कर दीं………

लड़का : **(चट से)** कुर्सी ? कहाँ—? ये तो आपने हटाई हैं।

गृहस्वामी : **(खिड़की से बाहर थूककर)** और अंग्रेजी तो आप सब भूल गये, अब कभी मेहमान आयें तो आप अपने ट्यूटर के साथ……

[थूकता है। लड़का बाहर की ओर देखता है और युवक, जो गृहस्वामी के आते ही उठ कर खम्भे के सहारे खड़ा हो गया था, भीतर की तरफ धीरे-धीरे बढ़ता है।]

गृहस्वामी : (युवक से) तुम कहाँ गये थे ? मैं कहता हूँ कि जब रात को तुम्हें पढ़ना हुआ करे तो शाम को साइकिलबाजी न किया कीजिए (थूकता है) भाईजान, इसमें आप ही का फ़ायदा है।

युवक : (चुप है, जैसे चुप रहकर वह उसे हरा देगा।)

गृहस्वामी : और तुम भीतर आ सकते थे...... (सहसा) और तुमने चाय कहाँ पी ?

युवक : जी नहीं पी।

[गृहस्वामी जैसे इस जवाब से असन्तुष्ट हो उठा। उसने दियासलाई बाहर फेंक दी और ट्यूटर की तरफ से फिर कर एक कुर्सी पर बैठ गया, फिर उठकर बत्ती जला दी। उसने सन्तोष से देखा और फिर बैठ गया—ट्यूटर अनजाने खिसककर लड़के के पास आना चाहता है। लड़का चुपचाप कुत्ते की तरफ बिना देखे टाँगों से खेल रहा है।]

ट्यूटर : आज तो मिसेज सिबल अच्छी हैं ?

गृहस्वामी : (जैसे उसने मिसेज सिबल का अपमान किया हो) क्या अच्छी है ? जरा-सी पार्टी पर आप देखिए हफ्ते भर से स्ट्रेण्ड हार्ट से पड़ी रहेंगी। अब उन लोगों को घूम-घूमकर मकान और बाग दिखाया जा रहा है। फिर हम लोगों की......

ट्यूटर : मैं आज आप से सुबह कुछ कहना चाहता था, पर आप सुबह से बिजी थे और शायद कल आप दौरे पर चले जायेंगे......

गृहस्वामी : (एकटक उसकी तरफ देखता है जैसे यह कोई बड़ा बेहूदा सवाल हो।)

ट्यूटर : मैं सोचता हूँ कि यह इण्टेलेक्चुअल ऐक्सपेरीमेंट का जीवन जो मैं...

[कुत्ता चीख पड़ता है; शायद उसका पैर जूते से कुचल गया है। ट्यूटर एक छोटी घड़ी के समान रुक जाता है। गृहस्वामी उछल पड़ता है।]

गृहस्वामी : देखो जी……(लड़का कुत्ता बगल में दबा कर भीतर भाग जाता है।)

गृहस्वामी : (ट्यूटर के बोलने का इन्तजार करके) मैं इस भीड़ भड़क्के से बहुत भड़कता हूँ और औरतों को तुम नहीं जानते। जब बाहर के आदमी होंगे तो वे बिल्कुल दूसरी ही हो जायँगी और अपने पति से भी यही उम्मीद करेंगी। मैंने आपके टेबुल पर फिंगर बोल, मैंने सुनी भी न थी पर मेरी मेम साहब शायद यह दिखलाना चाहती थीं कि जैसे हम लोग हफ्ते में दस दिन फिंगरबोल बरतते हैं—हुँ ह…

(ट्यूटर के हँसने का इन्तजार करता है)

और अगर किसी ने कुर्सी पर गीला तौलिया टाँग दिया तो हर एक आदमी को यह निशान देखना पड़ेगा—जैसे वह कोई क्यूबिज़म को डिज़ाइन हो।

ट्यूटर : (गम्भीरता से) अब तो सिसेज़ सिबल अच्छी हैं पहले से ?

गृहस्वामी : अच्छी क्या है ! (रुककर) उम्रका तकाज़ा है। अब देखो बाईस साल की मैरीड लाइफ में……(रुक जाता है जैसे ट्यूटर से ये बातें नहीं की जा सकतीं।)

ट्यूटर : (नीची नज़र हाथ से हाथ दबाये) मैं आप से कुछ कहना चाहता था · …मुझे आपके यहाँ पूरे दो महीने हो गये……

गृहस्वामी : (बाहर की आवाजों को सुनते हुए) मैं सब समझ सकता हूँ। यह आपकी मेहरबानी है; पर मैं मज़बूर हूँ। आमदनी का यह हाल है—उजला खर्च। मैं कतई मजबूर हूँ। वह मद्रासी मेम पच्चीस पर तैयार थी। मुझे कहना न चाहिए। मैंने सिर्फ आपकी इमदाद की गर्ज़ से, समझे, यह इन्तजाम किया था।

ट्यूटर : मुझे अफसोस है।

गृहस्वामी : (कुछ समझ नहीं पाता) तो तुम बाइसिकल पर कहाँ-कहाँ गये थे ?

ट्यूटर : मैं बाइसिकल पर कहीं नहीं गया, मैं गया ही नहीं······(एकबारगी रुक जाता है।)

(सन्नाटा हो जाता है। पर यह साफ है कि किसी का बोलना जरूरी है)

गृहस्वामी : (टाँग हिलाते हुए) मेरी जिन्दगी का एटीट्यूड बिलकुल मुख्तलिफ है। तुम अपने सोशलिज्ज-ओशलिज्म के जोश में शायद यह समझ बैठे हो कि जिन्दगी का गहरे से गहरा मतलब तुम्हारे लिए साफ हो गया। जैसे कोई बड़ा सरकस घोड़ा तुम्हारे काबू में आ गया; पर जिन्दगी अगर इस तरह लटकों ओर फारमूलों में बाँधी जा सकती, तो आज तक कब की खत्म हो जाती। जी······साहब सोशलिस्ट हैं पर आज जो कुछ भी हम 'कुत्तों' के समाज से आप इंसानों को मिला है हम वापस ले लें—

(ट्यूटर, साफ है कि, इन बातों को निरर्थक समझता है।)

हाँ हमारे स्कूलों, यूनिवर्सिटियों की तालीम, हमारी लाइब्रेरियाँ हमारे बाजार, हमारे···

ट्यूटर : (उठकर बाहर खिड़की की तरफ झाँकता है। गृहस्वामी भी उठ खड़ा होता है।)

गृहस्वामी : क्या वे आ रहे हैं ?

ट्यूटर : (चुपचाप बाहर झाँक रहा है।)

गृहस्वामी : यह कैसी पार्टी है ! (टहलता हुआ) आम लोग वाकई··· (फिर बैठ जाता है) मैं कहता हूँ कि आने वाली जेनेरेशन चाहे वह बिल्लियों की हो या सर्पों की, हमसे अच्छी होगी। हम से···

ट्यूटर : (मुस्कराता है) वे शायद पीछे से पार्क में चले गए।

गृहस्वामी : (चौंककर) पार्क में ! और कुसुम की तबियत, स्ट्रेण्ड हार्ट, इस रोग पर स्वरोग······मैंने एक किताब पढ़ी थी, उसमें हमारी सभ्यता, तहजीब की तपूबीह एक बड़ी दुकान से दी गई थी—

ऊपर, ऊपर, ऊपर—चढ़े चले जाइए; पर नीचे जमीन की आँतें हमें हजम करने के लिए बेताब हैं। वाकई आने वाला जेनेरेशन—पर मैं कहता हूँ कि कोई जेनेरेशन आती नहीं। यही जमीन की आँतें अब बजाय हज़म करने के कै कर देती हैं···

[भीतर कुछ आवाजें सुनाई देती हैं। गृहस्वामी सहसा ट्यूटर की तरफ कड़ाई से देखता है। ट्यूटर उस नज़र को बचाकर चुपचाप बाहर चला जाता है। भीतर के दरवाज़े से एक मोटी अधेड़ रमणी महीन सफेद बेल लगी सफेद धोती पहने, दो युवतियां दोनों नीली साड़ियाँ पहने, एक युवक अचकन चूड़ीदार पाजामे में आते हैं। चेहरे से वे सभी थके हुए मालूम होते हैं, पर वे सब बराबर हंस रहे हैं, जैसे जवान लड़कियाँ आपस में हंसती हैं, जब दूसरे का कोई साहस पूर्ण भेद जानती है।]

मोटी रमणी : **(पास की कुरसी पर बैठ जाती है, गृहस्वामी उसके बैठ जाने के बाद 'बैठिए' कहता है)** हम लोग पार्क में चले गये थे। **(हाँफकर)** आपका डिनोमॉइट भी हमने देखा **(सब हँस पड़ते हैं।)**

गृहस्वामी : **(जबरन हँसी में शामिल होकर)** कैसा डिनोमॉइट ?

[युवक ने उन लड़कियों को बैठा दिया है। सफेद धोती वाली भी, जो गृहस्वामिनी है, बैठ जाती है; सिर्फ युवक खड़ा रहता है।]

मोटी रमणी : आपका डिनोमॉइट। **(फिर हँसी होती है)**

गृहस्वामी : **(गम्भीर होकर)** खैर, यह तो मज़ाक है। पर यह मैं मानता हूँ, मेरा यकीन है कि दुनिया के सब गोले-बारूद एक आदमी की मर्ज़ी से चाहे वह हज़ारों मील दूर बैठा हो, फट सकते हैं।

[अब की वह खुद हँसी शुरू करता है]

गृहस्वामिनी : यह योग बोग सब जानते थे अब सब बेचारे भूल गए।

[फिर हँसी होती है, पर पहले से कुछ धीमी]

युवक : पापा का ख्याल चाहे मजाक हो, पर हिटलर और मुसोलिनी के लिए हमें ऐसी ताकत पैदा करनी होगी।

गृहस्वामी : (हँसकर) हिटलर और मुसोलिनी ही क्यों? और ऐसी ताकत मौजूद है, अगर हजरत आदमी की औलाद बहुत उछल-कूद मचायेगी तो वह ताकत काम में लाई जायेगी। बेचारा गाँधी क्या कहता है…।

युवक : गाँधी तो सठिया गया है।

[लड़कियाँ आपस में धीमी हँसी हँसती हैं।]

मोटी रमणी : मैं तो वह कुछ जानती नहीं। लेकिन हाँ, अभी विक्टोरिया सी कोई मलका हो जाय तो सब फिर ठीक हो जाय। दुनिया पर यह तबाही विक्टोरिया के मरने के बाद आई।

युवक : विक्टोरिया क्या करेगी?

गृहस्वामी : खैर लड़ाई-भिड़ाई की तो बात छोड़िये। मैं आपको एक किस्सा सुनाता हूँ…।

गृहस्वामिनी : क्या हम लोग यहीं बैठे रहेंगे? कहीं घूम आयें?

गृहस्वामी : खाना खाकर चलेंगे, सिनेमा या और कहीं…।

युवक : (लड़कियों के पास ही कुर्सी खिसकाकर बैठ जाता है। बड़ी लड़की उसकी तरफ देखकर लाज से सिमट जाती है) हाँ तो आपका वह किस्सा…।

गृहस्वामी : वह कुछ नहीं, लखनऊ में जब हिन्दू-मुसलमानों का दंगा हुआ तो हम लोग आगा तुराब के पास एक बंगले में रहते थे। हम वहाँ तीन हिन्दू थे और तीन ही चार घर मुसलमानों के थे। खैर हम लोग सब मिलकर उन मुसलमानों के पास गये कि या तो वे लोग हाता छोड़कर मुसलमानों की बस्ती में चले जायें या हम लोग हिंदुओं की। जब वहाँ गये तो मालूम हुआ वे लोग खुद हमसे डरे हुए हैं और लाठियाँ लिए अपने सामान और

बीबी बच्चे लिये जा रहे हैं। हाँ, उसी तरह यूरोप में सब एक दूसरे से···।

गृहस्वामिनी : बेबी क्या घूमने गया है ?

युवक : (अवाक्-सा) तो हम लोग नौ बजे तक क्या करेंगे !

[सब अपनी घड़ियाँ देखते हैं।]

छोटी लड़की : (धीरे से) अब साढ़े सात बजे हैं !

गृहस्वामिनी : रिकार्ड सुनियेगा ? पर कोई नया रिकार्ड तो हमारे पास है नहीं !

युवक : (ओंठ दबाकर) कोई गाना ही गाइये।

[लड़कियाँ, खासकर बड़ी शरमाती सी हैं।]

गृहस्वामी : हाँ बेटियो; गाओ न !

मोटी रमणी : आप गाइये; इन बेचारियों को आता क्या है ?

गृहस्वामी : ओ हो, तो आप ही गाइए !

[सब हँस पड़ते हैं और फिर एकबारगी सन्नाटा छा जाता है।]

मोटी रमणी : (युवक की तरफ देखकर) अब तुम कोई अपना विलायत का क़िस्सा सुनाओ।

युवक : (ऊबा-सा) विलायत का क़िस्सा—आप लोग ब्रिज खेलते हैं ?

मोटी रमणी : ये लड़कियाँ खेलती हैं, इनके दादा ने मुझे कितना सिखाया, पर मुझे आया ही नहीं।

गृहस्वामी : ब्रिज क्या होगा ? आइये···।

[गृहस्वामिनी एकबारगी उठकर भीतर जाना चाहती है।]

मोटी रमणी
गृहस्वामी } : कहाँ !!

गृहस्वामिनी : (द्वार के पास रुककर) आप लोगों के लिए काफी-आफी ही मँगवाऊँ।

मोटी रमणी : कॉफी क्या होगी—बैठिये बातें करें—अभी तो खाना खाना है।

[सब फिर हँस पड़ते हैं, और घड़ियाँ देखते हैं और सन्नाटा हो जाता है।]

गृहस्वामी : (युवक से) राजा जी, तुम आज ट्यूटर से बात कर लेना।

मोटी रमणी : ट्यूटर कौन ?

गृहस्वामिनी : बेबी के लिए रखा है, वबाले-जान हुआ जा रहा है।

गृहस्वामी : (मुस्कराते हुए) वह समझता है कि वह हम लोगों से बहुत ऊँचा है, और जो नौकर-मालिक का संबंध हम में है, इस कदर हमको छोटा बना देता है कि वह हमारा मुकाबला भी नहीं करता। उनका पाक ख्याल है कि वह हम लोगों के साथ एक इंटेलेक्चुअल एक्सपेरिमेंट कर रहे हैं···।

[कुछ समझदारी और कुछ नासमझी से लोग इस विचित्र आदमी पर खुश हो रहे हैं, केवल युवक गंभीर है।]

गृहस्वामी : उन्हीं का नहीं आज सब जवान आदमियों का यह हाल है। वे किताबों के अधकचरे असर से बगावत तो करना चाहते हैं, पर नहीं कर सकते; और मैं आपसे पूछता हूँ (एकबारगी युवक की ओर देखकर नज़र हटा लेता है) वह बगावत किसके खिलाफ है ? आप नेचर से वैर कर सकते हैं ? नहीं कर सकते ! आप छत पर से गिरेंगे तो दुनिया की कोई ताकत आपका सिर फटने से रोक नहीं सकती···(एक बार धीमा पड़कर) तुम उन्हें समझा देना···।

गृहस्वामिनी : मुझे तो आपकी बात पसंद आई कि विक्टोरिया जैसी मलका कोई हो जाय तो अभी सब ठीक हो जाय, वही बातें फिर लौट आयें।

मोटी रमणी : (गर्व से तनकर) लिखा है, 'यथा राजा, तथा प्रजा।' राजा तो ईश्वर है···।

गृहस्वामी : खैर, मैं तो यह नहीं मानता···।

युवक : (ऊबा-सा) आइए कुछ खेलें···।

गृहस्वामी : ताश से मुझे नफरत है, बिल्कुल छिछोरा खेल है।

गृहस्वामिनी : फिर क्या खेलें, तुम्हीं बताओ !

मोटी रमणी : मैं एक खेल बताती हूँ, हम लोग खेला करते थे—इनके पापा, हम, बीबीजी वगैरा (**सब लोग गौर से उसकी तरफ देख रहे हैं**)। एक आदमी, जैसे मैं, कुछ चीज़ों के नाम लूँ, जैसे 'कमरा'—

छोटी लड़की : (**चटक आवाज़ में**) नहीं, ऐसे नहीं, सब लोग एकाएक कागज़ और पेंसिल ले लें और कुछ लोग नहीं। एक आदमी बिना सोचे चीज़ों के नाम ले जैसे 'कमरा' और सब लोग उस लफ्ज़ को सुनकर एकदम जो उनके मन में आए, अपने कागज़ पर लिख लें, फिर सबके कागज़ पढ़े जायें।

युवक : क्या खेल है ? (**अपने को संभालकर**) यह तो अच्छी-खासी साइकोलॉजिकल स्टडी है।

गृहस्वामिनी : (**उत्साह से**) मैं कागज़ लाती हूँ।

[भीतर जाती है और ज़रा देर में चिट्ठी लिखने का पैड, दो कलम और कुछ पेंसिलें लेकर आती है। लड़कियाँ इस बीच में आपस में कुछ फुसफुसाती हैं। गृहस्वामी निर्विकार बैठा है, केवल युवक अनमना है।]

गृहस्वामिनी : लीजिए।

[युवक पैड लेकर सबको कागज़ देता है। दोनों लड़कियाँ कागज़ लेती हैं और फिर रख देती हैं। मोटी रमणी भी कागज़ ले लेती है पर फौरन कहती है—]

मोटी रमणी : मैं···मैं···तो नाम लूँगी।

गृहस्वामिनी : (**कागज लेती हुई**) अरे कागज़ ! लाओ बेटी।

[लड़कियाँ झेंपती हुई कागज़ उठा लेती हैं और दो पेंसिलें ले लेती हैं। युवक अपना फांउटेन पेन निकालकर गृहस्वामिनी (**अपनी माता**) को दे देता है और खाली हाथ खड़ा है।]

मोटी रमणी : तुम भी कागज़ ले लो, राजा जी !

युवक : मैं तो नाम लूँगा।

मोटी रमणी : (पेंसिल उठाते हुए) अच्छा।

युवक : (सबको तैयार देखकर) अच्छा मैं क्या कहूँ ? (हँसता है) अच्छा 'कमरा'। (सब लिखते हैं)

युवक : अच्छा, 'बिजली'। (फिर सब लिखते हैं)

युवक : अच्छा—अच्छा 'पैरेम्बुलेटर'। (फिर सब लिखते हैं)

युवक : अच्छा अब क्या—अच्छा, 'सेक्स'।

गृहस्वामी
मोटी रमणी } : सेक्स ! !

युवक : हाँ, हाँ !

गृहस्वामी : क्यों, सेक्स ?

युवक : यह भी लफ्ज़ है। आपने कहा था बिना सोचे नाम लो।

[सब लिखते हैं]

युवक : अच्छा बस।

[सबसे पहले लड़कियाँ अपने कागज़ मेज़ पर रखती हैं। सबसे बाद में गृहस्वामी।]

मोटी रमणी : (कागज़ उठाती हुई) मैं पढ़ूँगी (कागज़ उलटती-पलटती है) सबसे पहले मिस्टर सिबल का पर्चा है।

[पर्चा उठाकर, सब गौर से सुन रहे हैं।]

मोटी रमणी : 'ज़िम्मेदारी', ठीक ! बिजली, क्या लिखा है, हाँ—दिमाग ? बिल्कुल ठीक, दिमाग ने ही तो ऐसी चीज़ें निकाली हैं। पैरेम्बुलेटर—'शादी' वाह वाह; मिस्टर सिबल। (गृहस्वामी भद्दा झेंपता है) अच्छा सेक्स—साइंस, बहुत खूब। अब किसका कागज़ है, मिसेज़ सिबल का ?

गृहस्वामिनी : मेरा सबसे बाद में पढ़ियेगा।

मोटी रमणी : नहीं, बाद में क्यों ? सभी के तो पढ़े जायेंगे, तो सुनिए।

गृहस्वामिनी : मेरा बाद में पढ़िएगा।

गृहस्वामी : पढ़ने दो न कुसुम !

मोटी रमणी : अच्छा, कमरा—'बाथरूम'।

गृहस्वामी : बाथरूम, बाथरूम क्यों ?

युवक : खैर, यह भी तो कमरा है।

गृहस्वामिनी : अच्छा।

मोटी रमणी : बिजली—'अंधेरा'।

गृहस्वामी : हैं ?

गृहस्वामिनी : बिजली फेल हो जाती है तो मोमबत्तियाँ नहीं ढूँढ़नी पड़ती हैं ?

गृहस्वामी : कुसुम, यह क्या है ? बेबी क्या परेम्बुलेटर पर चढ़ने के काबिल है ? मैं कहे देता हूँ तुम लड़कों का सत्यानाश मारे देती हो।

गृहस्वामिनी : मैंने तो बेबी लिखा था। अपना बेबी थोड़ी ! तुम्हीं ने कहा था बिना सोचे।

मोटी रमणी : अच्छा सेक्स —'शाह नजफ रोड'।

गृहस्वामी : यह क्या है ? आखिर इसका क्या मतलब ?

गृहस्वामिनी : (अपराधिनी-सी) तुमने कहा था बिना सोचे···।

गृहस्वामी : तुम्हारा मतलब क्या था ?

गृहस्वामिनी : कुछ नहीं मैंने वैसे ही लिख दिया।

गृहस्वामी : वैसे ही ? सेक्स—'शाह नजफ रोड'। वाह-वाह !

युवक : पापा, यह तो खेल है। अच्छा अब अगला पढ़िए।

गृहस्वामी : नहीं इसे साफ हो जाने दीजिए। सेक्स, 'शाह नजफ रोड' वाह-वाह ! (**उठकर**) इसके माने क्या हैं ?

युवक : पापा यह तो खेल है।

[मोटी रमणी सब कागज़ रख देती है। लड़कियाँ अपना कागज़ उठा लेती हैं। युवक व्यग्र-सा बैठ जाता है।]

युवक : मैं कहता था···।

गृहस्वामी : कमरा—'बाथरूम', सेक्स—'शाह नजफ रोड'। क्या कहना है!

[सब लोग चुपचाप गम्भीर बैठे हैं; केवल युवक कुछ व्यग्र है। पाँच ही मिनट बाद ज़रा-सा परदा खिसकाकर भीतर से नौकर कहता है—'मेज लगाऊँ हजूर']

गृहस्वामिनी: हाँ, हाँ (तेजी से उठकर भीतर चली जाती है। भीतर से उसकी आवाज सुनाई पड़ती है—बेबी आ गया? नहीं आया अभी?)

[मोटी रमणी और लड़कियाँ भी उठकर चली जाती हैं। युवक और गृहस्वामी रह जाते है, दो मिनट बाद गृहस्वामी भी उठकर भीतर चला जाता है। युवक व्यग्र, बरामदे की तरफ, पर बरामदे के पास ही ट्यूटर मिल जाता है और दोनों कमरे में लौट आते हैं।]

ट्यूटर : (अपराधी-सा) मैं अपनी डिक्शनरी यहाँ भूल गया हूँ।

युवक : आप क्या यहीं बैठे थे?

ट्यूटर : जी हाँ।

युवक : यहीं बरामदे में?

ट्यूटर : जी हाँ।

युवक : हूँ! (टहलता है। ट्यूटर अपनी सब जगहों में किताब खोजता है।)

युवक : आज पापा से आपकी बातचीत हुई?

ट्यूटर : जी हाँ।

युवक : क्या बातचीत हुई?

ट्यूटर : कुछ नहीं—उन्होंने कहा कि आने वाली जेनरेशन चाहे बिल्लियों की हो या साँपों की, पर हमसे अच्छी होगी।

युवक : (चौंककर और ट्यूटर के पास आकर) किसने कहा?

ट्यूटर : मिस्टर सिबल ने।

[युवक कुछ देर टहलता रहता है और फिर भीतर चला जाता है। स्टेज पर सिर्फ ट्यूटर रह जाता है और वह एक कुर्सी पर बैठकर एक अधजला सिगरेट निकालकर सुलगाता है।]

[पटाक्षेप]



ऊसर : नाटक-परिचय

'ऊसर' भुवनेश्वर का प्रसिद्ध एकांकी है और उनकी नाटक-कला का सर्वोत्तम उदाहरण है। वास्तव में 'कारवां' नामक एकांकी-संग्रह के सब नाटक कई दृष्टियों से विशिष्ट हैं। वस्तु की दृष्टि से इनमें आधुनिक शहरों में पैदा हुए मध्यवर्ग के भीतरी विरोध तथा खोखलेपन को उभारा गया है तथा इसे चरित्रों के यथार्थ-स्वभाव के द्वारा प्रकट किया है।

एक घर में मेहमान आने वाले हैं। लड़के का ट्यूटर दो महीने की तनख्वाह न पाने से उदास है पर उसे चुपचाप बिना प्रतिरोध किए गृहस्वामी की आदर्शवादी भाषण कला के नमूने सुनने पड़ते हैं। खुद गृहस्वामी बात-बात पर मीनमेख निकालने तथा बोलते रहकर समय बिताने के आदी हैं पर ट्यूटर को मद्रासी मेम की धौंस जमा ही जाते हैं। अपनी पीढ़ी से समय की पाबंदी न रखने की शिकायत करते हैं और अपने समय का ख्याल नहीं। मेहमानों का कोई कार्यक्रम नहीं इसलिए यों ही समय काटते हैं। कभी बहस विक्टोरिया पर तो कभी लड़ाई तो कभी गाने पर होती है। बहस वास्तव में होती ही नहीं, यों ही जिक्र छिड़ता है और छिड़ते-छिड़ते ताश तथा नाम लिखने के खेल की बात पर सहमति हो जाती है। यह खेल मिस्टर सिबल के चितक जीवन का संकेत करता है और बताता है कि मिसेज़ सिबल अपना अतिरिक्त समय यों ही दोस्तों के साथ बिताती होंगी, अपने मनचाहे पुरुष से भी संबंध जोड़े होंगी। इस बात का केवल संकेत है, पर गृहस्वामी कई बार बात को दुहरा के बतला देता है कि कहीं कोई राज की बात है वरना उसकी पत्नी ने क्यों बाथरूम और फिर अंधेरा और फिर शाह नजफ रोड ही लिखा।

नाटककार ने बताया है कि बाहर से देखने से जिनका जीवन सुसभ्य और नियमित लग सकता है, भीतर वे भी विरोधों तथा खालीपने से भरे होंगे। गृहस्वामी के घर में वैभव हो सकता है, पर ट्यूटर को ज़रा से पैसे के लिए टरका देते हैं। बाईस साल से वे विवाहित हैं पर आपसी विश्वास नहीं पैदा कर सके हैं। ज़िंदगी को फार्मूलों में बाँधने में विश्वास नहीं करते पर उनकी अपनी पत्नी को उनसे तथा उनको अपनी पत्नी से प्रेम नहीं भी हो सकता है, यह स्पष्ट हो जाता है। कहते तो हैं कि कोई नेचर से, अपनी प्रकृति या स्वभाव से वैर नहीं कर सकता, पर पत्नी के नेचर को समझकर बौखला जाते हैं। यों, यह सारी ज़िंदगी बंजर है। इसमें कुछ नहीं उग सकता।

अधूरे वाक्यों या असंबद्ध वार्तालापों से नाटक के चरित्रों का मनोविज्ञान खूब चित्रित हुआ है। नाटक की गति धीमी है और वार्तालाप कट कट जाते हैं। इससे शहरी मध्यवर्ग के जीवन में फैले कटाव का चित्रण करना अभिप्रेत है। किसी बड़ी समस्या पर छिड़ने वाली बहस के शीघ्र बाद मामूली वार्तालाप देने से लोगों के मन की भटकन का पता चलता है। यों तो लगता है कि नाटक में कोई एक बात कोई एक समस्या नहीं ली गई है पर नाटक की समस्या यही है और ठीक अध्ययन करने से कथावस्तु का एक पूरा सिलसिला उभरता है। ध्यान देने की बात है कि नाम लिखने के खेल के प्रसंग में मोटी रमणी सिर्फ मि० सिबल तथा मिसेज़ सिबल के ही नाम पढ़ती है क्योंकि नाटक की मूल समस्या इनकी ही ज़िंदगी से जुड़ी है।

सहायक सामग्री

1. **तुरप दी गई हैं**—तुरप—सीना या सीकर मोड़ना। (तुलना कीजिए कश्मीरी 'त्रोप' से)।
2. **प्लास्टर ऑफ पेरिस**—एक नर्म तथा लचकीला मिट्टी-सा पदार्थ, जिससे मूर्तियाँ बनाई जाती हैं।
3. **पेकनीज**—कुत्ते की एक जाति।
4. **कर्रा इस्तरी किया सूट**—सूट या बाल तो नहीं रोकते, पर यदि वह जोर से बोले तो उसके फैशनेबल वस्त्रों का अनादर हो सकता है।

5. **चुप रहकर वह उसे हरा देगा**—युवक न सिर्फ चुप है बल्कि पिता पर अपना जानबूझकर चुप रहना जतला भी देता है।

6. **मिसेज़ सिबल**—गृहस्वामिनी, गृहस्वामी अर्थात् मिस्टर सिबल की पत्नी। इनका नाम कुसुम है।

7. **इंटेलेक्चुअल एक्सपेरीमेंटर**—बौद्धिक प्रयोग करने वाला। ट्यूटर इस घर में बौद्धिक तजरुबे करने की बात करता है, यद्यपि सत्य यह है कि उसकी दो महीने की तनख्वाह नहीं मिली है।

8. **फिंगर-बोल** (Finger Bowl)—फल या मिठाई जैसी चिपचिपी चीज़ उंगलियों से उठाकर खाने से जो स्नेह उंगलियों पर लगता है वह धोने के लिए शीशे की कटोरी, जिसमें गर्म पानी रखा जाता है।

9. **क्यूबिज़्म** (Cubism)—चित्रकला की एक शैली जिसमें आकृतियाँ कोण-सी रची जाती हैं। इसे प्रसिद्ध चित्रकार पाब्लो पिकासो ने प्रचलित किया था।

10. **स्ट्रेण्ड हार्ट**—हृदय ठीक से रक्त का संचार न करा सके तो रोगी हो जाता है। विशेष तौर पर मोटे या चर्बीयुक्त शरीर के कारण हो जाता है।

11. **तश्बीह**—उपमा। तुलना करना।

12. **योग बोग**—योगाभ्यास। साधना। शीरीं पत्नी उनके योग की हँसी उड़ाती हैं।

13. **हिटलर, मुसोलिनी**—जर्मनी तथा इटली के तानाशाह (डिक्टेटर) जिन्होंने दुनिया भर को जीतकर अपने अधीन करने की खातिर दूसरा विश्वयुद्ध (1939-45) छेड़ा और दुनिया को तबाही के द्वार पर ला खड़ा किया।

14. **विक्टोरिया**—इंगलैंड की महारानी, जिसके दौर में भारत का शासन ईस्ट इण्डिया कंपनी से निकलकर सीधे विलायत के अधिकार में चला गया।

15. हिन्दू-मुसलमानों का दंगा—दंगे से साधारण लोगों को, जो हिन्दू हों या मुसलमान, एक दूसरे से कोई बैर नहीं होता, लेकिन उनके मन में एक दूसरे से डर पैदा किया जाता है।

16. बेबी—लड़का जो नाटक के आरंभ में कुर्सी से खेलता है।

17. साइकोलोजिकल स्टडी (Psychological Study)—मनोवैज्ञानिक अध्ययन, जिससे जाना जाए कि किसके मन में क्या है।

18. पैरेम्बुलेटर—बच्चा-गाड़ी, जिसमें बिठा या लिटाकर बच्चे को घुमाते हैं।

19. सेक्स—लिंग—पुरुष या स्त्री की पहचान और संबंध।

10. शाह नजफ रोड—किसी सड़क और सड़क पर बसी बस्ती का नाम है।

21. आने वाली जेनेरेशन—ट्यूटर ने रुपये माँगे तो गृहस्वामी ने एक तो अपनी तंगी का रोना रोया था, दूसरे इन्सानियत, सिविलिटी सोशलिज़्म आदि पर एक भाषण पिला दिया था। बेचारा ट्यूटर, चुपचाप सुनता रहा था, कुछ बोला न था। अब जो युवक उससे पूछता है तो जल-भुन के कह बैठता है—वह वाक्य जो उसे याद रहा है। यह वाक्य ही उसे ज्यादा चुभा है क्योंकि यह, गृहस्वामी के भाषण में से सबसे ज्यादा, उसके सवाल से, उसकी तनख्वाह न मिलने की समस्या से असंबद्ध है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) बोध :

1. इस नाटक के शीर्षक का औचित्य समझाइए।
2. पुरुष के असंबद्ध तथा लंबे वार्तालापों से उसके चरित्र की क्या विशेषता प्रकट होती है ?
3. ट्यूटर को तनख्वाह न दिए जाने से गृहस्वामी के घर की किस विशेषता पर प्रकाश पड़ता है ?

4. विक्टोरिया का ज़िक्र क्यों छेड़ा जाता है? इसकी प्रासंगिकता क्या है?

5. कागज़ पर, मन में आए लफ्ज़ को लिखने के खेल से मि० सिबल तथा मिसेज़ सिबल के मनोविज्ञान से या उनके जीवन के रहस्यों से कैसे पर्दा हटता है?

(ख) **सप्रसंग व्याख्या : (विवरणात्मक अध्ययन)**

1. मैं इस भीड़-भड़क्के से बहुत······क्यूबिज़्म का डिज़ाइन हो।
2. मेरी ज़िंदगी का एटीट्यूड······हम वापस ले लें।
3. उन्हीं का नहीं, आज सब जवान······फटने से नहीं रोक सकती।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

परिचय :

इनका जन्म 1910 ई० में हुआ। 'अश्क' जी ने नाटक लिखने की प्रेरणा तब पाई जब देश में नाटक आन्दोलन व्यवस्थित ढंग से शुरू हुआ और प्रगतिवादी लेखकों के द्वारा देश में 'इण्डियन पीपुल्ज थियेटर एसोसिएशन' (इप्टा IPTA) की स्थापना की गई। नाटक उनके लेखक जीवन का अंग बन गया। 'अश्क' एक सफल कहानीकार और उपन्यासकार भी हैं पर वे मूलतः नाटककार हैं और अपने नाटकों के मंचन की भी स्वयं ही देख-रेख करते हैं। हिन्दी एकांकी के क्षेत्र में यथार्थवादी परम्परा का सूत्रपात करने वालों में 'अश्क' जी का भी प्रमुख स्थान है। इन्होंने शिल्प के क्षेत्र में उतने प्रयोग नहीं किये जितने वस्तु के क्षेत्र में। एक ओर तो इन्होंने सफल प्रहसन तथा व्यंग्य लिखे हैं और दूसरी ओर सामाजिक जीवन की असंगतियों को लेकर कई गम्भीर एकांकियों की रचना की है। स्वयं एक सफल अभिनेता भी रहे हैं। इनके व्यक्तिगत अनुभव ने इनके एकांकियों में वह गति ला दी है जो बिना ऐसे अनुभव के नहीं आ पाती।

अश्क जी ने पहले उर्दू में लिखना आरम्भ किया और बाद में हिन्दी में आये। उन्हें जितनी ख्याति नाटककार तथा एकांकीकार के रूप में मिली, उतनी ही ख्याति उपन्यासकार तथा कहानीकार के रूप में भी मिली। इसके अतिरिक्त इन्होंने कविता, निबन्ध, संस्मरण, रिपोर्ताज सब पर लेखनी चलाई है। आलोचकों की चिन्ता न कर निरन्तर नये-नये प्रयोगों की खोज में लगे रहे हैं। यही इनकी सबसे बड़ी विशेषता है। नयी पीढ़ी आज भी इन्हें अपने साथ कदम मिला कर चलते पाती है।

'अश्क' जी की अधिकांश रचनाएँ इनके अपने जीवन के अनुभव पर आधारित हैं। अपनी रचनाओं में कल्पना को थोड़ा बहुत स्थान तो देते हैं परन्तु कोरी कल्पना के आधार पर लिखने में विश्वास नहीं करते। इसीलिए

इनकी रचनाओं की स्थितियाँ बहुत आत्मीय तथा पात्र बहुत जाने पहचाने होते हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं में पंजाब के निम्न मध्यवर्गीय जीवन को सफलता पूर्वक उतारा है।

इनका जन्म स्थान जालन्धर है, मगर काफ़ी समय लाहौर और बम्बई में रहने के बाद पिछले उन्नीस-बीस साल से इलाहाबाद में रह रहे हैं और अपनी प्रकाशन संस्था (**नीलाभ प्रकाशन**) चला रहे हैं।

इनके एकांकी संग्रह निम्नलिखित हैं :

देवताओं की छाया में; तूफान से पहले; चरवाहे; पक्का गाना; पर्दा उठाओ, पर्दा गिराओ; साहब को जुकाम है, आदि।

तौलिये

(रंग-नाटक)

चरित्र



वसन्त

मधु

सुरी

चिन्ती

मंगला

स्थान : नयी दिल्ली

[पर्दा बसन्त के ड्रइंग रूम में उठता है। ड्राइंग रूम न बहुत बड़ा है न छोटा। न सामान से अधिक भरा है, न बिल्कुल खाली। बसंत एक फर्म में मैनेजर है। अढ़ाई सौ वेतन पाता है। दिल्ली में अढ़ाई सौ अधिक महत्व नहीं रखते, पर वह फर्म का मैनेजर है इस लिए कमरा सजा है और दरवाज़ों परपर्दे लगे हैं। दायीं ओर दीवार के साथ मेज़ लगी है, उस पर कागज़ पत्रों के अतिरिक्त टेलीफ़ोन भी रखा है।

मेज़ के इधर एक दरवाजा है, जो अन्दर कमरे में जाता है। मेज़ के उस ओर कोने में एक अंगीठी है, किन्तु आग शायद इसमें नहीं जलती, क्योंकि अंगीठी का कपड़ा अत्यन्त सुन्दर है, उस पर सजावट की चीज़ें भी रखी हुई हैं—वैसी ही जैसी मध्यवर्गीय घरों में होती हैं—लेकिन वे बिखरी नहीं है, करीने से लगी हुई हैं। दो पीतल के फूलदान, दूसरी वस्तुओं के अतिरिक्त अंगीठी के दोनों कोनों पर रखे हुए हैं। इसी अंगीठी के कपड़े की लम्बी झालर को छूता हुआ रेडियोसेट नीचे एक छोटी-सी मेज पर रखा है, जिसके मेज़पोश का डिज़ाइन अंगीठी के कपड़े से मैच करता है और मधु की सुरुचि का पता देता है। अंगीठी के ऊपर दीवार पर एक कैलेण्डर ऐसे लटक रहा है कि मेज़ पर बैठे हुए व्यक्ति के ऐन सामने पड़े। कैलेण्डर को एक नज़र देखने से मालूम होता है कि १६४३ के नवम्बर का महीना है। अंगीठी के बराबर सामने दीवार में एक दरवाज़ा है जो रसोई घर को जाता है।

इस दरवाज़े से हटकर सामने की दीवार के साथ एक बेंत के कोच का सेट है। इसके आगे एक तिपाई पड़ी है। सेट की गद्दियाँ सुन्दर और सुरुचिपूर्ण हैं और तिपाई का कवर अंगीठी के कपड़े से मैच करता है।

सामने दीवार की बायीं ओर, सोफ़ासेट से ज़रा हटकर एक दरवाज़ा है जो स्नानगृह को जाता है।

बायीं दीवार के साथ शृंगार की मेज़ लगी है जिससे वसन्त और मधु दोनों अपने टायलेट का काम ले लेते हैं। इसके ऊपर खूंटियों पर तौलिये टंगे हैं। मेज़ के दोनों ओर एक दो कुर्सियाँ पड़ी हैं। बायीं दीवार में इधर को एक दरवाजा है जो बाहर को जाता है।

पर्दा उठते समय हम वसन्त को शृंगार की मेज़ पर बैठे हजामत बनाते देखते हैं। वास्तव में वह हजामत बना चुका है और तौलिये से मुँह पोंछ रहा है। तभी रसोई घर से स्वेटर बुनती हुई मधु प्रवेश करती है।]

मधु : यह फिर आपने मदन का तौलिया उठा लिया। मैं कहती हूँ आप···

वसन्त : **(मुँह पोंछते-पोंछते रुक कर)** ओह ! यह कम्बख्त तौलिये ! मुझे ध्यान ही नहीं रहता। बात यह है **(हंसता है)** कि मदन के तौलिये छोटे हैं और हजामत···

मधु : **(चिढ़ कर)** "और हजामत के तौलिये जैसे हैं। जी ? ज़रा आँख खोल कर देखिए हजामत के तौलिये कितने रंगीन हैं, बीसियों तो धारियाँ पड़ी हैं उनमें, और मदन के कितने सादे और······

वसन्त : लेकिन रोयेंदार तो···

मधु : **(व्यंग्य से)** दोनों हैं। जी ! आँखें बन्द करके आदमी दोनों का अन्तर बता सकता है, मैं कहती हूँ···

वसन्त : **(निरुत्तर होकर)** वास्तव में मेरा ध्यान दूसरी ओर था। लाओ, मुझे हजामत का तौलिया दे दो। कहाँ है ? मुझे दिखाई ही नहीं दिया।

मध : **(खूँटी पर टंगा हुआ तौलिया उठाकर)** यह तो टंगा है सामने फिर भी···

वसन्त : मैंने ऐनक उतार रखी है और ऐनक के बिना तुम जानती हो हमारी दुनिया···

[खिसियानी हँसी हँसता है]

मधु : जी, आपकी दुनिया ! जाने आप किस दुनिया में रहते हैं। अब तो ऐनक नहीं। ऐनक हो तो कौन-सा आपको कुछ दिखाई देता है ?

[मुँह फुला कर धम से कोच में धंस जाती है और चुपचाप स्वेटर बुनने लगती है। वसन्त हजामत का सामान रखता है। फिर अचानक उसकी ओर देखकर।]

वसन्त : यह तुमने फिर मुँह फुला लिया। नाराज़ हो गई हो ?

मधु : (व्यंग्य से हंसकर) नहीं मैं नाराज़ नहीं।

वसन्त : तुम्हारा ख्याल है कि मैं इतना मूर्ख हूँ कि इतना भी नहीं पहचान सकता ?

मधु : (उसी तरह हंसकर) मैं कब कहती हूँ ?

वसन्त : (सामान वैसे ही छोड़ कर कुर्सी को उसकी ओर घुमाते हुए) मैंने तुमसे कितनी बार कहा है कि अपने भावों को छिपा लेना तुम्हारे बस की बात नहीं। तुम्हारी उपेक्षा, तुम्हारा क्रोध, तुम्हारी समस्त भावनाएँ तुम्हारी आकृति पर प्रतिबिम्बित हो जाती हैं। तुम्हें मेरी आदतें बुरी लगती हैं पर मैंने तुम्हें अन्धेरे में नहीं रखा। अपने सम्बन्ध में, सब कुछ बता दिया था। मैंने अपने सब पत्ते---

मधु : मेज़ पर रख दिये थे। (उसी तरह व्यंग्य से हंस कर) मैं कब इनकार करती हूँ ?

वसन्त : तुम्हारी यह हंसी कितनी विषैली है। इसी तरह बिष घोल-घोल कर तुमने अपने स्वास्थ्य का सत्यानाश कर लिया है।

मधु : (चुप रहती है।)

वसन्त : मैं तुम्हें किस तरह विश्वास दिला दूँ कि मैं स्वयं सफाई का बड़ा भारी समर्थक हूँ।

मधु : (हंसती हैं) इसमें क्या संदेह है।

वसन्त : और मुझे स्वयं गन्दगी पसन्द नहीं।

मधु : (सिर्फ 'हूँ')

वसन्त : पर मैं तुम्हारी तरह एरिस्टोक्रैटिक वातावरण में नहीं पला और मुझे नज़ाकतें नहीं आतीं। हमारे घर में सिर्फ एक तौलिया होता था और हम छहों भाई उसे काम में लाते थे।

मधु : आप मुझे एरिस्टोक्रैट कहकर मेरा उपहास करते हैं। मैं कब कहती हूँ कि दस-दस तौलिये हों ?

वसन्त : दस और किस तरह होते हैं ? नहाने का अलग, हजामत बनाने का अलग, हाथ मुँह पोंछने का अलग और फिर तुम्हारे और मदन के…।

मधु : **(पहलू बदल कर)** परन्तु मैं पूछती हूँ इसमें दोष क्या है। जब हम खरीद सकते हैं तो क्यों न दस-दस तौलिये रखें ? कल, परमात्मा न करे हम इस योग्य न रहें तो मैं आपको दिखा दूँ कि किस तरह गरीबी में भी सफाई रखी जा सकती है। तौलिये न सही, खादी के अंगोछे सही, कोई पुरानी धुरानी पर उजली चादर या धोती के टुकड़े सही कुछ भी रखा जा सकता है। परन्तु जिस तौलिये से किसी ने बदन पोंछा हो उससे किस प्रकार कोई अपना शरीर पोंछ सकता है ?

वसन्त : मैं कहता हुँ हम छः भाई एक ही तौलिये से बदन पोंछते रहे।

मधु : लेकिन बीमारी…।

वसन्त : हम में से किसी को कभी बीमारी नहीं हुई।

मधु : लेकिन स्किन की बीमारी……

वसन्त : तुम्हें और मदन को तो कोई बीमारी नहीं…और फिर रोग इस तरह नहीं बढ़ता। रोग बढ़ता है कमज़ोरी से। जब हमारे शरीर में रोग से लोहा लेने वाले लाल कीटाणु कम हो जाते हैं, तब। "चूहा सैंदनशाह" की बात जानती हो ?

मधु : चूहा सैंदनशाह……?

बसन्त : शिकार करने के विचार से कुछ अफसर चूहा सैंदनशाह गये। उनमें अमरीका के रॉक फेलर ट्रस्ट के कुछ डॉक्टर भी थे। लंच के समय उन्हें पानी की आवश्यकता पड़ी। बैरे ने आकर बताया कि गाँव में कोई कुँआ नहीं। लोग जौहड़ का पानी पीते हैं। डॉक्टरों को विश्वास न आया क्योंकि जौहड़ का पानी मैला चीकट था ऐसी कोई ही बीमारी होगी, जिसके कीड़े उस पानी में न हों और चूहा सैंदनशाह के जाट हृष्ट-पुष्ट, लंबे तगड़े……

मधु : तो क्या आप चाहते हैं हम जोहड़ का पानी पीना शुरू कर दें ? (हंसती है)

बसन्त : **(उठ कर कमरे में घूमता हुआ)** तुम इस बात पर अपनी विषाक्त हंसी बिखेर सकती हो। **(उसके सामने रुक कर)** लेकिन तुम्हें मालूम हो कि अमरीका के डॉक्टर वहीं रहे ! एक जाट के रक्त का उन्होंने विश्लेषण किया। मालूम हुआ कि उसमें रोग का मुकाबिला करने वाले लाल कीटाणु, रोग की मदद करने वाले सफेद कीटाणुओं से, कहीं अधिक संख्या में हैं ! तब उन्होंने वहाँ के लोगों की खुराक का निरीक्षण किया। पता चला कि वे अधिकतर दही और लस्सी का प्रयोग करते हैं और दही में बहुत सी बीमारियों के कीड़ों को मारने की शक्ति है। बीमारी का मुकाबिला इन नजाकतों और नफासतों से नहीं होता, बल्कि शरीर में ऐसी शक्ति पैदा करने से होता है, जो रोग के आक्रमण का प्रतिरोध कर सकें। **(फिर घूमने लगता है)**

मधु : मैंने चूहा सैंदनशाह की बात सुनी। मैले तौलिये से शरीर में लाल कीड़े फैलें या सफेद, मुझे इससे मतलब नहीं। मैं तो इतना जानती हूँ कि बचपन ही से मुझे सफाई पसन्द है। मामा जी…

वसन्त : (मेज़ के कोने का सहारा लेकर) तुमने फिर अपने मामा और मौसी की कथा छेड़ी। माना कि वे विलायत हो आए हैं लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि जो वे कहते हैं वह वेद वाक्य है। उस दिन तुम्हारे मौसा आये थे। उन्होंने हाथ धोये तो मैंने कहीं भूल से तौलिया पेश कर दिया। (मधु के पास आकर) उन्होंने दांत निपोर दिए। (नकल उतारते हुए) "मै किसी दूसरे के तौलिये से हाथ नहीं पोंछता"—और वे अपने रुमाल से हाथ पोंछने लगे। मैं पूछता हूँ अगर वे उस तौलिये से पोंछ लेते तो उन्हें कौन-सी बीमारी चिमट जाती ?

मधु : अब यह तो···

वसन्त : और तुम्हारे मामा जी (वापस जा कर फिर मेज़ पर बैठ जाता है) तुम्हारे जाने के बाद एक दिन मैं वहाँ गया। रात वहीं रहा। दूसरे दिन मुझे सीधे दफ्तर आना था। कहने लगे—"हजामत यहीं बना लो। मैं एक दिन छोड़कर हजामत बनाता हूँ; मुझे कोई ऐसी ज़रूरत नहीं।" जब उन्होंने अनुरोध किया तो मैंने कहा—"अच्छा बनाए लेता हूँ।" तब वे एक निकृष्ट-सा रेज़र ले आये और कहने लगे (नकल उतारते हुए)—"मैं अपने रेज़र से किसी दूसरे को हजामत नहीं बनाने देता इसलिए मैंने मेहमानों के लिए दूसरा रेजर रख छोड़ा है।" क्रोध के मारे मेरा रक्त खौल उठा लेकिन अपने आपको रोककर मैंने केवल इतना कहा—"रहने दीजिए, मै घर जाकर शेव कर लूँगा !"

मधु : मामा जी···

वसन्त : (अपनी बात जारी रखते हुए) इस बात पर शायद उन्हें महसूस हुआ कि मुझे उनकी बात बुरी लगी और उन्होंने मुझे अपने ही रेजर से हजामत बनाने पर विवश किया। किन्तु मेरे हजामत बनाने के बाद मेरे ही सामने ब्लेड उन्होंने लॉन में फेंक दिया और नौकर से कहा कि रेज़र को sterlise कर लाये। (नकल उतारते हुए) मामा जी······

मधु : मैं कहती हूँ, आप उनके स्वभाव से परिचित नहीं; आपको बुरा लगा। स्वच्छता और सुरुचि की भावना भी काव्य और कला की भांति······

वसन्त : (आवेग में उसके पास आकर) क्यों काव्य और कला को अपनी इस घृणा में घसीटती हो ? तुम्हारे ऐसे वातावरण में पले हुए सब लोगों की सुरुचि में घृणा की भावना काम करती है—शरीर से, गन्दगी से, जीवन से घृणा की।

मधु : (चुप रहती है)

वसन्त : और मुझे जीवन से घृणा नहीं। मुझे शरीर से भी घृणा रहीं।

मधु : (हंसती है) तो फिर कूड़े के ढेरों पर बैठिए।

[वसन्त फिर कुर्सी पर जा बैठता है और कुर्सी को और समीप ले आता है।]

वसन्त : मुझे गन्दगी से घृणा नहीं किन्तु मैं गन्दगी पसन्द नहीं करता—बड़ा सूक्ष्म सा अन्तर है। यदि हमें जीवन का सामना करना है तो रोज़ गन्दगी से दो चार होना पड़ेगा। फिर इसमें घृणा कैसी ? जिन ग़रीबों को तुम अपने बरामदे के फर्श पर भी पांव न रखने दो, मैं उनके पास घण्टों बैठ सकता हूँ।

मधु : (हंसती है।)

वसन्त : और मैंने ऐसे गन्दे इलाकों में जीवन के निरन्तर कई वर्ष बिताये हैं, जहाँ तुम्हारी सुरुचि की सनक तुम्हें गुज़रने तक न दे। समझीं !

मधु : (वहीं बैठे और वैसे ही स्वेटर बुनते हुए) पर अब तो आप गरीब नहीं, अब तो आप गन्दे इलाकों में नहीं रहते। गरीबी की विवशता मैं समझ सकती हूं, किन्तु गन्देपन का स्वभाव मेरी समझ से दूर की चीज़ है।

वसन्त : तो तुम्हारे विचारों में मैं स्वभाव से गन्दा हूँ।

मधु : (उसी विषैली हंसी के साथ) मैं कब कहती हूं।

वसन्त : (खड़ा हो जाता है) ऐसे दिन मुझ पर आये हैं, जब एक बनियाइन पहने मुझे कई-कई दिन गुजर जाते थे। उसे धोने तक का अवकाश न मिलता था और अब मैं दिन में दो-दो बार बनियाइन बदल लेता हूं, यदि यह गन्देपन की आदत है तो···

मधु : (उसी हंसी के साथ) मैं कब कहती हूं ?

वसन्त : स्वच्छता बुरी नहीं, न सुरुचि बुरी है, पर तुम हर चीज़ को सनक की हद तक पहुंचा देती हो, और सनक से मुझे चिढ़ है। (फिर कमरे में घूमने लगता है) बनियाइन और तौलियों की कैद मैंने मान ली किन्तु यदि मैं गलती से बनियाइन न बदल पाऊँ या गलत तौलिया ले लूँ तो इसका यह मतलब तो नहीं कि मैं स्वभाव से गन्दा हूं और मेरे इस स्वभाव पर तुम्हें मुँह फुलाकर बैठ जाना या अपनी विषैली हँसी बिखेरना चाहिए।

मधु : (चुप रहती है)

वसन्त : (रेडियो के पास से) तुमने अपने आपको इस झूठे बन्धन से इतना जकड़ लिया है कि मेरा जरा-सा खुलापन भी तुम्हें अखरता है। अपने सिद्धान्त को तुमने सनक की हद तक पहुँचा दिया। ऊषी और निम्मो···

मधु : (बुनना छोड़ देती है) आपने फिर ऊषी और निम्मो की बात चलाई। ऊषी और निम्मो···

वसन्त : (हँसते हुए) कल मिल गयी बाज़ार में। मैंने पूछा—निम्मो आयी नहीं तुम इतने दिनों से ? कहने लगी—हमको चची से डर लगता है।

[हँसता है]

मधु : (उसी विषैली हँसी के साथ) मैं उन्हें खा जाती हूं।

वसन्त : (तिपायी के पास से) खाओगी तो तुम क्या, पर वे बच्चियाँ हैं···

मधु : बच्चियाँ (व्यंग्य से मुंह बिचकाती हुई हंसती है)।

वसन्त : (उसके व्यंग्य को सुना-अनसुना करके तिपाई पर बैठते हुए) हँसना उनका स्वभाव है। वे हँसेंगी तो बेबात की बात पर हँसेंगी और तुम्हारी 'सुरुचि' और 'संस्कृति'—बस दबे-दबे घुटे-घुटे फिरो, उंह! (बेजारी से सिर हिलाकर उठता है) जो आदमी जी भर खा पी नहीं सकता, हंस-हंसा नहीं सकता, वह जीवन में कर ही क्या सकता है? दुख और मुसीबतों के बंधन ही क्या कम हैं जो जिन्दगी को शिष्टाचार की बेड़ियों से जकड़ दिया जाय—यह न करो, वह न करो; ऐसे न बोलो; यों न बैठो, वों न बैठो---इन इन वर्जनाओं का कहीं अन्त भी है?

मधु : (चुप रहती है)

वसन्त : और फिर तुम्हारे इस शिष्टाचार में वह स्निग्धता कहाँ है? तुम्हारे आने से पहले मैं, देव और नारायण एक ही लिहाफ में बैठ जाते थे। जरा कल्पना तो करो सर्दियों की सुबह या शाम एक ही चारपायी पर, एक ही रजाई घुटनों पर ओढ़े, चार पांच मित्र बैठे हैं। गप्पें चल रही हैं। सुख दुःख की बातें हो रही हैं। वहीं चाय आ जाती है। साथ-साथ बातें होती हैं, साथ-साथ चुस्कियाँ लगती हैं—इस कल्पना में कितना आनन्द है, कितनी स्निग्धता है। अब मित्र आते है, अलग-अलग कुर्सियों पर बैठ जाते हैं। एक दूसरे पर बोझ मालूम होता है। (जोश से) चिड़िया तक तो फटकने नहीं देती तुम बिस्तर के पास। मैं तो इस तकल्लुफ में घुटा जाता हूं।

[जाकर कुर्सी पर बैठ जाता है। और हजामत का सामान ठीक से रखने लगता है।]

मधु : मैं तकल्लुफ स्वयं पसन्द नहीं करती। पर जब दूसरों को सफाई का कुछ भी ख्याल न हो तो विवश हो इससे काम लेना पड़ता है। आप ही बताइए—कितने लोग हैं, जिन्हें सफाई की

आदत है ? कितने हैं जो हमारी तरह पाँव धोकर रज़ाई में बैठते हैं ?

वसन्त : (वहीं से) पाँव धोने की मुसीबत रज़ाई में बैठने का लुत्फ ही किरकिरा कर देती है।

मधु : कुत्ता भी बैठता है तो दुम हिलाकर बैठता है। आदमी स्वभाव ही से सफाई-पसन्द है। मुझे गन्दे लोगों से सख्त घृणा है। **(फिर स्वेटर बुनने लगती है।)**

वसन्त : **(मुड़कर)** घृणा, घृणा, घृणा—यही तो मैं कहता हूं। तुम्हें मुझ से घृणा है, मेरे स्वभाव से घृणा है, मेरे मित्रों से घृणा। तुम्हारा वातावरण मेरे वातावरण से घृणा करता है।

मधु : **(उसी विषैली हँसी के साथ)** यह आप कह सकते हैं।

वसन्त : तुम्हें मेरी हर एक बात से घृणा है, मेरे खाने पीने से, उठने बैठने से, हँसते बोलने से। मैं जब हँसता हूं, जी खोलकर हंसता हूं और इसीलिए ऊषी और निम्मो···

मधु : **(स्वेटर को फेंककर)** आपने फिर ऊषी और निम्मो की कथा छेड़ी। मुझे हँसना बुरा नहीं लगता। पर समय कुसमय का भी ध्यान होना चाहिए। उस दिन पार्टी में आते ही ऊषी ने मेरे कान पर चुटकी ले ली और निम्मो ने मेरी आंखें बन्द कर लीं। कोई समय था उस तरह हँसी मजाक का ? मुझे हँसी से घृणा नहीं, बदतमीज़ी से घृणा है।

वसन्त : ऊषी···

मधु : पहले सिरे की बदतमीज़ है। मदन की वर्षगांठ के दिन वे सब आये थे। निम्मो इतनी चंचल है, पर वह तो बैठ गयी एक ओर ! यह नवाबज़ादी सैंडल समेत आ बैठी मेरे सामने टांगें पसारे और वे उसके गन्दे सैंडल मेरी साड़ी के बिल्कुल समीप आ गये। आप इस बदतमीज़ी को शौक़ से पसन्द करें मैं तो

इसे हरगिज़ पसन्द नहीं कर सकती । जिसे बैठने, उठने, बोलने का सलीका नहीं, वह मनुष्य क्या पशु है ।

वसन्त : (गरज कर) पशु ! तो तुम मुझे पशु समझती हो ? तुम मनुष्य की सहज भावनाओं को निर्मम वर्जनाओं की बेड़ियों में बांध कर रखना चाहती हो कि उसकी रूह मर जाये । मुझे यह सब पसन्द नहीं और इसलिए तुम मुझ से घृणा करती हो । तुम्हारी इस विषाक्त हँसी में मैं जानता हूं, कितनी घृणा छिपी है और मुझे डर है कि किसी दिन मैं सचमुच पशु बन जाऊँ । मेरा जी चाहता है इस ज़लील तौलिये को उठाकर बाहर फेंक दूँ और, और मेरा जी चाहा करता है कि मैं तुम्हारी इस हँसी का गला घोंट दूँ । घृणा—तुम मेरी हर बात से घृणा करती हो, मुझे पशु समझती हो !

मधु : **(स्वेटर उठाते हुए, भरे हुए गले से)** आप नाहक हर बात को अपनी ओर ले जाते हैं । अपनी कल्पना से मेरे मन में वे बातें देखते हैं, जो मैं स्वप्न में भी नहीं सोचती । मुझे आपसे घृणा है या नहीं, इसे मैं ही जानती हूं, पर आपको मुझ से ज़रूर घृणा है । आपने मुझ से शादी कर ली, मैं जानती हूं, लेकिन विवाह के लिए आपका तैयार हो जाना, यह नहीं बताता कि आपको मुझसे घृणा नहीं । इसका गुस्सा चाहे आप मेरी सुरुचि पर निकालें, या संस्कृति पर, पहनावे अथवा स्वभाव पर !

वसन्त : तुम तो···

मधु : मेरा ख़याल था, मैं आपको सुख पहुंचा सकूँगी । आपके अव्यवस्थित जीवन को व्यवस्था सिखा दूँगी, किन्तु मैं देखती हूं कि मेरे सारे प्रयास विफल हैं······आपको इस गन्दगी, इस अव्यवस्था में सुख मिलता है । आपको मेरी व्यवस्था, मेरी सफ़ाई बुरी लगती है । मैं आपकी दुनिया में न रहूंगी । मैं आज ही चली जाऊँगी ।

[उठ खड़ी होती है तभी टेलिफोन की घण्टी बजती है। वसन्त जल्दी से जाकर चोंगा उठाता है।]

वसन्त : हैलो, हैलो, जी, जी।

मधु : (नौकरानी को आवाज़ देते हुए) मंगला !

मंगला : (स्नान गृह की ओर के दरवाज़े से आते हुए) जी बीबी जी !

मधु : मेरा बिस्तर तैयार कर और ट्रंक इस कमरे में ले आ !

मंगला : बीबी जी, आप···

मधु : मैं जो कहती हूं, उठा ला !

[मंगला चली जाती है। वसन्त "जी", "जी", "बहुत अच्छा" कहते हुए चोंगा रख देता है और हँसता हुआ आता है।]

वसन्त : मैं कहता हूं तुम अपना सामान बांधने की सोच रही हो, पहले मेरा सामान तो ठीक कर दो। मुझे पहली गाड़ी से बनारस जाना है। अभी साहब ने आदेश दिया है। अपना सामान बाद में बांधना।

[हँसता है] [पर्दा तत्काल गिरता है]

× × ×

[कुछ क्षण बाद पर्दा फिर उठता है। कमरा वही है। सामान भी वही है, सिर्फ इतना अन्तर है कि जहाँ मेज थी वहाँ एक पलंग बिछा है और टेलिफोन उसके सिरहाने एक तिपायी पर रखा है। मेज़ ड्रेसिंग-टेबल की जगह चली गई है और श्रृंगार की मेज़, अपनी कुर्सी के साथ दायें कोने को सरक गयी है। पलंग पर मधु लिहाफ पर लिए दीवार के सहारे घुटनों अन्यमनस्क-सी औंधी लेटी है।

कुछ क्षण बाद वह कैलेण्डर की ओर देखती है। उसकी दृष्टि का अनुसरण करते ही मालूम होता है कि जनवरी का महीना है और नया साल चढ़ गया है जिसका मतलब यह है कि मधु को हम दो महीने बाद देख रहे हैं। बाहर का दरवाज़ा खुला है और तीखी हवा अन्दर आ रही है। लिहाफ

को कंधों तक खींचते हुए मधु नौकरानी को आवाज़ देती है—'मंगला, मंगला !' लेकिन आवाज़ इतनी हल्की है कि शायद मंगला तक नहीं जाती. मधु रज़ाई लेकर लेट सी जाती है। कुछ क्षण बाद मंगला स्वयं ही आती है।]

मंगला : बीबी जी, यह आप उदास, उदास क्यों हैं ?

मधु : (लेटे-लेटे, ज़रा सिर उठाकर) मंगला, यह किवाड़ बन्द कर दे, वर्फ सी हवा अन्दर आ रही है।

मंगला : (किवाड़ बन्द करते हुए) मेरी बात का उत्तर नहीं दिया आपने, बीबी जी ?

मधु : यों ही कुछ तबीयत उदास है, मंगला !

मंगला : कोई पत्र आया बाबूजी का ?

मधु : आया था, शायद आज-कल में आ जायँ !

मंगला : तो फिर··

मधु : (विषाद से हँसकर) तबीयत कुछ भारी-भारी सी है शायद सर्दी के कारण···

[दरवाज़े पर दस्तक होती है]

मधु : (ज़रा उठकर) कौन ?

सुरो : (बाहर से) दरवाज़ा तो खोलो।

मधु : (बैठ कर) मंगला, ज़रा किवाड़ खोलना।

[मंगला दरवाज़ा खोलती है। सुरो और चिन्ती आती हैं।]

मधु : (रज़ाई परे करके) अरे सुरो, चिन्ती, तुम यहाँ कैसे ?

सुरो : आज ही सवेरे यहाँ उतरी हैं।

चिन्ती : माता जी प्रयाग जा रही थीं। सरिता बहिन का खयाल था कि दिल्ली भी देखते चलें।

मधु : ठहरी कहाँ हो ?

चिन्ती : कनाट-प्लेस में मलिक चाची के यहाँ। देर से उनका अनुरोध था कि दिल्ली आयें तो···

मधु : और मुझे पत्र तक नहीं लिखा। इतने दिनों से मैं कह रही थी दिल्ली आओ तो।

सुरो : सब से पहले तुम्हीं से मिलने आयी हैं। माताजी कहती थीं कुतुबमीनार···

चिन्ती : मैंने कहा कुतुबमीनार एक तरफ है और मधु बहिन एक तरफ···

[मधु ठहाका लगाती है।]

सुरो : और फिर दो घण्टे से मारे मारे फिर रहे हैं तुम्हारी तलाश में।

मधु : लेकिन पता तो मेरा···

चिन्ती : सुरो बहिन भूल गयीं। इन्होंने ताँगे वाले को भैरों के मन्दिर चलने के लिए कह दिया।

मधु : (आश्चर्य से) भैरों के मन्दिर···

चिन्ती : और ताँगे वाला ले गया सब्जी मण्डी, कहीं तीस हजारी के गिर्जे के पास।

मधु : गिर्जे के पास। (ज़ोर से ठहाका लगाती है)

चिन्ती : (अपनी बात जारी रखते हुए) तब इन्हें खयाल आया कि मंदिर तो हनुमान का है। फिर नई दिल्ली वापिस आयीं।

[मधु फिर ज़ोर से हँसती है]

सुरो : और तब पता चला कि हम लोग तो यों ही परेशान होते रहे। घर तो तुम्हारा पास ही था।

मधु : तुम लोग भी, मैं कहती हूँ···(ज़ोर से हँस पड़ती है)

सुरो : यह इतना हँसना तुम कहाँ से सीख गयीं ! तुम तो थीं जन्म की सिड़ी···।

चिन्ती : भाई साहब ने सिखा दिया इतने ज़ोर के ठहाके लगाना ! कहाँ हैं वे ?

मधु : बनारस गये हुए हैं, दो महीने-से । वहाँ की फर्म का मैनेजर बीमार पड़ गया था । शायद आज-कल में आ जाएँ ।

चिन्ती : अच्छे तो हैं ?

मधु : अच्छे हैं । लेकिन तुम खड़ी क्यों हो ? इधर आ जाओ बिस्तर पर (**नौकरानी को आवाज़ देती है**) मंगला, मंगला !

[सुरो और चिन्ती कुर्सियों पर बैठने लगती हैं ।]

मधु : अरे कुर्सियाँ छोड़ो । बस चली आओ इधर पलंग पर बैठते हैं लिहाफ लेकर—

सुरो : लेकिन मेरे पाँव··· (**हंसकर**) और मैं धो नहीं सकती इन्हें ।

मधु : अरे क्या हुआ है तुम्हारे पाँवों को ! जराबें तो पहन रखी हैं तुमने ?

चिन्ती : पर तुम्हारा बिस्तर ?

मधु : कुछ नहीं होता बिस्तर को । मेरे बिस्तर का ध्यान छोड़ो । बस चली आओ इधर । यह किवाड़ बन्द कर दो, बर्फ-सी हवा अन्दर आ रही है ।

[मंगला आती है]

मंगला : आपने आवाज दी थी बीबी जी ?

मधु : मंगला चाय बनाकर लाओ ।

[चिन्ती किवाड़ बन्द कर देती है । तीनों घुटनों पर लिहाफ लेकर आराम से बिस्तर पर बैठ जाती हैं ।]

सुरो : पुष्पा की शादी हो रही है, अगले महीने में ।

मधु : (**चौंककर, खुशी से**) लेफ्टिनेण्ट वीरेन्द्र के साथ ?

चिन्ती : (**हंसकर**) सब तुम्हारे-जैसी नहीं । वह प्रेम करती रहेगी वीरेन्द्र से जीवन भर, शादी तो उसकी प्रोफेसर मुनशीराम ही के साथ होगी ।

मधु : पर मुनशीराम···।
खड़े का खालसा है भई। लेफ्टिनेण्ट साहब तो आते हैं कभी-कभी वर्ष भर में एक दो बार, प्रोफेसर साहब सिर पर सवार रहते है आठों पहर, बुरे साये की तरह।

चिन्ती : वह लाम-सलम्मा लमढ़ीक सा आदमी ! ज़ोर की हवा चले तो उड़ता चला जाए। मैं सोचती हूँ कि उसे पुष्पा जैसी मोटी-मुटल्ली से प्रेम भी हुआ तो कैसे ?

मधु : और मैं इस बात पर हैरान हूँ कि पुष्पा उसे पसन्द ही कैसे करती हैं। मैं तो उसे पाँच मिनट के लिए भी सहन न कर सकूँ। चेहरे पर तो उसके नहूसत बरसती है और मालूम होता है जैसे···।

चिन्ती : वर्षों स्नान गृह का मुँह न देखा हो।

सुरो : सहन तो उसे करना ही पड़ता है। उसके पिता प्रोफेसर मुनशी-राम पर बड़े प्रसन्न हैं। उन्होंने प्रोफेसर साहब को पढ़ाया, लिखाया और अपने कॉलेज में लगाया। वीरेन्द्र तो चार वर्ष बी० ए० में रहे, और प्रोफेसर मुनशीराम ने रिकार्ड तोड़ा था।

चिन्ती : अब दोनों मिलकर बच्चे पैदा करने का रिकार्ड तोड़ेंगे।
[सब हँसती हैं मंगला चाय की ट्रे लाती है]

मंगला : कहाँ लगाऊँ चाय, बीबी जी ?

मधु : वहाँ मेज़ पर रख दो और एक-एक प्याला बनाकर हमें दो। यह तिपायी सरकाकर इस पर बिस्कुट रख दो।

[आश्चर्य से]

सुरो : मधु !

मधु : अरे उठकर कहाँ जाओगी ! यहीं बैठी रहो। इस गर्म बिस्तर से उठकर डाइनिंग टेबल पर जाने में आ चुका चाय का मज़ा !

चिन्नी : (उठने का प्रयास करते हुए कल के-से क्रोध से) मधु !

मधु : हटाओ भी; अब बैठी रहो यहीं।

चिन्नी : (व्यंग्य से) तो ब्याह के बाद रानी मधुमालती ने अपने सब सिद्धान्त बदल डाले हैं। अब डाइनिंग टेबल के बदले बिस्तर पर ही चाय पीती हैं और बिस्तर पर ही खाना भी नोश फरमाती हैं।

सुरो : कहाँ तो यह कि पानी का गिलास भी पीना हो तो डाइनिंग रूम की ओर भागतीं और कहाँ यह कि···

मधु : अरे क्या रखा है इस तकल्लुफ में। सच कहो, इस समय किसका जी चाहता है कि इस नर्म-गर्म बिस्तर से उठकर डाइनिंग टेबल पर जाये। लो बिस्कुट लो और चाय का प्याला उठाओ। ठण्डी हो रही है।

[सब चाय के प्याले लेती हैं और चाय पीते-पीते बातें करती हैं]

सुरो : मैं पूछती हूँ—यदि चाय बिस्तर पर गिर जाय ?

मधु : तो क्या हुआ ? चादर धुलवायी जा सकती है और फिर किसी दिन सहसा हो जाने वाली दुर्घटना के भय से कोई रोज के सुख आराम को तो नहीं छोड़ देता।

सुरो : सुख आराम (व्यंग्य से हँसती है) तुम बिस्तर पर चाय पीने को बहुत बड़ा सुख समझती हो···।

[फिर हँसती है]

चिन्नी : और फिर संस्कृति, सुरुचि···।

मधु : आदमी की आधारभूत भावनाओं पर नित्य नये दिन चढ़ते चले जाने वाले पर्दों का नाम ही तो संस्कृति है। सोसाइटी के एक वर्ग के लिए दूसरा वर्ग सदैव असभ्य और असंस्कृत रहेगा। फिर कहाँ तक आदमी सभ्यता और संस्कृति के पीछे भागे।

और रही सुरुचि, तो यह भी अभिजात-वर्ग की स्नॉबरी का दूसरा नाम है।

सुरो : यह तुम क्या कहरही हो ? क्या तुम चाहती हो कि इतना कुछ सीख-समझकर आदमी फिर पहले की भाँति बन जाए ?

मधु : नहीं, बर्बर बनने की क्या जरूरत है। आदमी सीमाओं को छूता हुआ क्यों चले ? मध्य का मार्ग क्यों न अपनाए। न इतना खुले कि बर्बर दिखायी दे, न इतना बँधे कि सनकी। महात्मा बुद्ध ने कहा था—

सुरो : (हँसकर) महात्मा बुद्ध ! तुम्हें हो क्या गया है, सदियों पुराने गले-सड़े विचारों को तुम आज की सभ्यता पर लादना चाहती हो !

चिन्ती : मनुष्य हर घड़ी, हर पल प्रगति के पथ पर अग्रसर है। आज के सिद्धान्त कल काम न देंगे और कल के परसों नहीं। बर्नार्ड शॉ

मधु : (व्यंग्य से हँसकर) बर्नार्ड शॉ—हटाओ, क्या बे मजा बहस ले बैठी हो। मंगला चाय का एक-एक कप और बना।

चिन्ती : बस भई, अब तो हम चलेंगे। इतनी देर हो गई हमें यहाँ आये। मंगला, हाथ धुला दो हमारे।

मधु : अरे भई, एक-एक प्याला तो और लो।

सुरो : नहीं मधु, अब चलेंगे। वहाँ लोग परेशान हो रहे होंगे। हमने कहा था, हम केवल मधु का घर देखने जा रहे हैं। एक-आध घण्टे में लौट आयेंगे और यहाँ आने ही में दो घण्टे लग गए।

चिन्ती : बाथ-रूम किधर है ? हम वहीं हाथ धो आते हैं।

मधु : अरे क्या धोओगी इस सर्दी में हाथ ?

सुरो : नहीं भई; हाथ तो हम जरूर धोयेंगे। चिप-चिप कर रहे हैं।

मधु : तो मरो ! (मंगला से) मंगला इनके हाथ धुला दो।

सुरो : बाथरूम···।

मधु : अरे बाथरूम में जाकर क्या करोगी। इधर बरामदे में ही धो लो। (**किवाड़ खोलकर सुरो और चिन्ती हाथ धोती हैं। मधु चुपचाप अपने प्याले की शेष चाय पीती है।**)

सुरो : (**गीले हाथ लिए वापस आकर**) तौलिया कहाँ है ?

मधु : तौलिया नहीं दे गयी मंगला ? अच्छा वह ले लो जो खूँटी पर टंगा है।

सुरो : (**क्रोध से**) मधु, तुम अच्छी तरह जानती हो···।

मधु : मंगला, इन्हें अन्दर से एक धुला हुआ तौलिया ला दो। (**चिन्ती भी गीले हाथ लिए आ जाती है। मंगला तौलिया ले आती है और दोनों हाथ पोंछती हैं।**) मैं कहती थी अभी कुछ देर बैठतीं !

चिन्ती : नहीं भई, अब कल आने का प्रयास करेंगे। (**हाथ पोंछकर तौलिया कुर्सी की पीठ पर रख देती है।**)

मधु : प्रयास नहीं, जरूर आना। भूलना नहीं। और खाना भी यहीं खाना।

सुरो : हाँ हाँ, अवश्य आयेंगे।

[मधु उठने का प्रयत्न करती है]

अब उठने का तकल्लुफ न करो। बैठी रहो अपने गरम लिहाफ़ में। दरवाज़ा हम बन्द किए जाते हैं। बर्फ़-सी हवा अन्दर आ रही है। (**हँसती हुई चली जाती हैं। दरवाज़ा बन्द किए जाती हैं**)

मधु : मुझे एक प्याला बना दो मंगला।

मंगला : (**प्याला बनाकर देते हुए**) ये कौन थीं बीबी जी ?

मधु : मेरी सहेलियाँ थीं। कॉलेज में हम साथ-साथ पढ़ते थे और होस्टल में भी साथ-साथ रहते थे। (**कुछ क्षण चुपचाप चाय पीती है, फिर**) मंगला !

मंगला : जी बीबी जी।

मधु : मंगला, ज़रा मेरी ओर देखकर बता तो, क्या मैं सचमुच बदल गई हूँ ?

मंगला : **(चुप रहती है)**

मधु : **(जैसे अपने आपसे)** मेरी सहेलियाँ कहती हैं, मैं बदल गई हूँ। पड़ोसिनें भी यही कहती हैं। मेरी ओर ज़रा देखकर बता तो मंगला, क्या मैं वास्तव में बदल सकी हूँ ?

मंगला : मैं तो आठों पहर आपके पास रहती हूँ बीबी जी, मैं क्या जानूँ ?

मधु : **(अपनी बात जारी रखते हुए)** मेरी आँखों में देखकर बता मंगला क्या ये बदल सकी हैं। इनमें घृणा की झलक तो नहीं ?

मंगला : **(आश्चर्य से)** घृणा !

मधु : मेरे व्यवहार में तकल्लुफ और बनावट तो नहीं ?

मंगला : **(उसी आश्चर्य से)** बनावट, तकल्लुफ !

मधु : तकल्लुफ, बनावट, नफरत—तीनों को अब मैं अपने मन से निकाल देना चाहती हूँ। **(जैसे अपने आप से)** दो महीने पहले वे इसी बात पर मुझसे लड़कर चले गये थे।

मंगला : क्या कह रही हैं बीबी जी आप ? बाबू जी तो···।

मधु : **(शून्य में देखते हुए)** उनका गुस्सा अभी तक नहीं उतरा। इन महीनों में उन्होंने मुझे एक पत्र भी नहीं लिखा।

मंगला : एक पत्र भी नहीं लिखा, लेकिन···।

मधु : **(व्यंग्य से)** "मैं कुशल से हूँ, अपनी कुशलता का पता देना।" या "मैनेजर बीमार है, ज्यों ही स्वस्थ हुआ, चला आऊँगा !" इन्हें तुम पत्र लिखना कहती हो। वे मुझसे नाराज़ हैं। उनका खयाल है कि मैं उनसे घृणा करती हूँ।

मंगला : **(कुछ भी समझने में असफल होते हुए)** घृणा, घृणा ?

मधु : यदि मैं बचपन ही से ऐसे वातावरण में पली हूँ जहाँ सफाई और सलीके का बेहद खयाल रखा जाता है तो इसमें मेरा क्या दोष है ? (**लगभग भरे गले से**) वे सफाई और सुरुचि को मेरी घृणा बताते हैं। मैं बहुतेरा यत्न करती हूँ कि इस सफाई-उफाई को छोड़ दूँ; इन तकल्लुफात को तिलांजलि दे दूँ, पर अपने इस प्रयास में कभी-कभी मुझे अपने से घृणा होने लगती है। (**लंबी साँस भरकर**) बचपन से जो संस्कार मैंने पाये हैं उनसे मुक्ति पाना मेरे लिए उतना आसान नहीं। (**अचानक दृढ़ता से**) पर नहीं, मैं अपनी इस सारी सनक को छोड़ दूँगी। पुरानी आदतों से छुटकारा पा लूंगी ! वे समझते हैं, मैं उनसे नफरत करती हूँ !

मंगला : आप क्या कह रही हैं, बीबी जी ?

मधु : वे समझते हैं मैं उनसे, उनके स्वभाव से, उनके वातावरण से, उनकी हर बात से घृणा करती हूँ। (**सिसकने लगती है**) मैंने इन दो महीनों में अपने आपको बिल्कुल बदल डाला है। (**दरवाज़ा अचानक खुलता है और वसन्त प्रवेश करता है।**)

वसन्त : हैल-लो, मधु ? क्या हाल-चाल हैं जनाब के ? (**मंगला से**) मंगला, ताँगे से सामान उतरवाओ और (**जेब से पैसे निकालते हुए**) यह लो डेढ़ रुपया ! ताँगे वाले को दे दो।

[मंगला पैसे लेकर चली जाती है।]

वसन्त : (**फिर मधु के पास आते हुए**) कहो भई, क्या हाल-चाल है, यह कैसी रोनी सूरत बना रखी है ! जी कुछ खराब है क्या ?

मधु : (**जो इस बीच में पलंग से उतर आई है; हँसने का प्रयास करते हुए**) सूखा जाड़ा पड़ रहा है ! जुकाम है मुझे तीन चार दिन से।

वसन्त : मैंने तुम्हें कितनी बार कहा है कि अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखा करो। सेहत सेहत-सेहत ! दुनिया में जो कुछ है सेहत

है। जीवन में तुम्हारी यह सफाई और सुघड़ता, यह सुरुचि संस्कृति, ये नज़ाकतें, नफासतें इतना काम न देंगी, जितनी सेहत। यही ठीक नहीं रहती तो ये सब किस काम की और जब यह ठीक है तो फिर इनकी कोई ज़रूरत नहीं। (**अपने कथन की बारीकी का स्वयं ही आनन्द लेता है और फिर जैसे उसने पहली बार कमरे को अच्छी तरह देखा हो**) अरे यह काया पलट कैसी ? यह पलंग ड्राइंग-रूम में कैसे आ गया ? और ट्रे और प्याले…।

मधु : मैंने पलंग इधर ही बिछा दिया है कि आप और आपके मित्रों को ज़रा भी कष्ट न हो। मज़े से लिहाफ लेकर बैठिए टेलीफोन आपके सिरहाने रहेगा।

वसन्त : (**उल्लास से**) वाह ! मैं कहता हूँ ! तुम…तो…तो बेहद अच्छी हो। (**उसे आलिंगन में भर लेता है।**)

मधु : मैं स्वयं अपनी सहेलियों के साथ इसी लिहाफ में बैठी रही हूँ !

वसन्त : (**आश्चर्य मिश्रित उल्लास से उसकी दोनों बाँहों को थामे, उसकी आँखों में देखते हुए**) सच !

मधु : (**उसकी ओर प्रशंसा की इच्छुक प्यार भरी दृष्टि से देखते हुए**) और चाय भी हमने यहीं पी है।

वसन्त : (**प्रसन्नता से**) वाह ! (**उसे छोड़ कमरे में एक चक्कर लगाकर**) मैं कहता हूँ अब तुम ज़िन्दगी का रहस्य समझ सकी हो। सफल जीवन का भेद बाह्य तड़क-भड़क में नहीं, अंतर की दृढ़ता में है। यदि हमारी प्रतिरोध शक्ति हमारी Power of Resistance कायम है…।

मधु : चाय भी अब यहीं पिया कीजिएगा, अपने गर्म-गर्म बिस्तर पर……

वसन्त : (अत्यधिक उल्लास से) वाह, वाह ! अब इसी बात पर तुम मंगला से कहो, मेरे लिए चाय का पानी रखे ।

मधु : अब तो आप नाराज नहीं हैं ?

वसन्त : (आश्चर्य से) नाराज ?

मधु : आप इतने दिनों तक मन में गुस्सा रखते हैं, यह मैंने स्वप्न में भी न सोचा था।

वसन्त : (और भी आश्चर्य से) गुस्सा !

मधु : दो महीने से आपने ढंग से पत्र तक नहीं लिखा ।

वसन्त : पर मैंने···।

मधु : पत्र लिखे थे···जी !·····''मैं कुशल हूँ । अपनी कुशलता का पता देना ।'' इसे पत्र लिखना कहते होंगे ।

वसन्त : (ज़ोर से ठहाका मारता है) तो तुम इसका कारण यह समझती हो कि मैं तुमसे नाराज हूँ ? पगली, तुमसे भी कभी कोई नाराज हो सकता है !

मधु : पर दो पंक्तियाँ—

वसन्त : दो पंक्तियाँ लिखने का अवकाश मिल गया, तुम इसी को बहुत समझो ।

मधु : अच्छा आप जाकर हाथ मुँह धो लीजिए । मैं चाय तैयार करती हूँ ।

वसन्त : मैं कहता हूं तुम कितनी ·····तुम कितनी अच्छी हो !

[उसे बाँहों में भरकर कमरे में एक चक्कर दे देता है]

मधु : (हँसकर अपने आपको उसके आलिंगन से मुक्त करते हुए) अच्छा, अच्छा, चलिए । पहले हाथ मुँह धोकर कपड़े बदलिए ।

वसन्त : यह फिर तुमने कपड़े बदलने की रट लगाई ?

मधु : क्यों कपड़े न बदलिएगा ? एक रात एक दिन गाड़ी में सफर करके आये हैं । मार्ग की धूल सारे शरीर पर पड़ी हुई है ।

चलिये-चलिये, जल्दी हाथ मुँह धोकर कपड़े बदलिए। मैं इतने में चाय तैयार करती हूँ (**वसन्त को स्नानगृह के दरवाजे की ओर धकेल देती है और नौकरानी को आवाज़ देती है**) मंगला, मंगला !

मंगला : (**दूसरे दरवाजे से झाँकती है**) जी, बीबी जी !

मधु : सामान रखवा लिया या नहीं ?

वसन्त : जी बीबी जी !

मधु : यह ट्रे और प्यालियाँ उठा। पानी तो चाय का ठण्डा हो गया होगा। बाबू जी उधर हाथ धोने गए हैं। मैं और पानी रखती हूं। इतने में यह पानी फेंककर चायदानी और प्यालियाँ अच्छी तरह धो डाल। (**मंगला ट्रे आदि उठाकर जाती है। एक चम्मच गिर जाती है**)

(**कुछ तीखे स्वर में**) यह चम्मच फिर फर्श पर गिरा दी तूने। बीस बार कहा है कि चम्मच न गिराया कर, फर्श पर चिप-चिप होने लगती है। अब ट्रे बाहर रखकर जगह को कपड़े से पोंछ डाल।

वसन्त : (**स्नानगृह से**) अरे, भई साबुन कहाँ है ?

मधु : ध्यान से देखिये वहीं तखती पर पड़ा है।

वसन्त : (**वहीं से**) और तौलिया !

मधु : हाथ मुँह धो आइये और इधर कमरे से सूखा नया तौलिया लेकर पोंछ लीजिये। (**मंगला कपड़े का टुकड़ा भिगोकर लाती है और चुपचाप फर्श साफ करने लगती है।**) तू फर्श साफ करके चायदानी और प्यालियाँ धो, चाय का ! (**रसोईघर के दरवाजे से चली जाती है। कुछ क्षण तक मंगला चुपचाप फर्श साफ किये जाती है। फिर वसन्त हाथ मुँह धोकर कुर्ते की आस्तीनें चढ़ाये, गुनगुनाता हुआ आता है—**

हिंडोला कैसे झूलूं, मेरा जिया डोले रे ;
मैं झूला कैसे झूलूं, मेरा जिया डोले रे !

और अपने ध्यान में मग्न कुर्सी की पीठ पर पड़े हुए उस तौलिये से मुंह पोंछने लगता है जिससे सुरो हाथ-मुंह पोंछकर गई है ।)

मधु : (रसोईघर से) यह केतली कैसी बना रखी है मंगला तूने ? मनों मैल जमी हुई है पेंदे में (केतली हाथ में लिये आती है) तुझे कभी बर्तन न साफ करने आयेंगे मंगला । कितनी बार कहा है कि सफाई का···(अचानक वसन्त को सुरो वाले तौलिये से मुंह पोंछते हुए देखकर लगभग चीखते हुए) यह सूखा नया तौलिया लिया है आपने ? अभी तो सुरो और चिन्ती चाय पीकर इस तौलिये से हाथ पोंछकर गयी हैं ।

वसन्त : (घबराकर) परन्तु नया···।

मधु : नया तौलिया उधर कमरे में टंगा है ।

वसन्त : ओह, यह कम्बख्त तौलिये ! मुझे ध्यान ही नहीं रहता ! वास्तव में दोनों तौलिये साफ हैं, मुझे···।

मधु : जी साफ हैं ! जरा आँख खोलकर देखिए । गीले और सूखे···

वसन्त : मैंने ऐनक उतार रखी है और ऐनक के बिना तुम जानती हो हमारी दुनिया···(खिसियानी हँसी हँसता है)

मधु : जी आपकी दुनिया । जाने आप किस दुनिया में रहते हैं । अब तो ऐनक नहीं । ऐनक हो तो कौन-सा आपको कुछ दिखायी देता है (मुँह फुलाकर धम से कौच में धँस जाती है)

वसन्त : यह तुमने फिर मुँह लटका लिया । नाराज हो गयी हो ।

मधु : (व्यंग्य से हँसकर) नहीं मैं नाराज नहीं ।

वसन्त : (चिल्लाकर) तुम्हारा ख्याल है मैं इतना मूर्ख हूं जो यह भी नहीं पहचान सकता ।

(पर्दा सहसा गिर जाता है)



तौलिये : नाटक-परिचय

मनुष्य के संस्कार, कितने भी प्रयत्न किए जाएँ, नहीं बदल सकते। कृत्रिमता से हम अपने जीवन को थोड़े समय के लिए बदल सकते हैं पर वास्तविकता फिर समय पाकर हावी होगी। उपेन्द्र नाथ 'अश्क' का यह नाटक इस मनोवैज्ञानिक समस्या को बहुत ही सुलझे तरीके से उभारता है। अनमेल विवाह की समस्या केवल आयु के अन्तर से ही पैदा नहीं होती अपितु समान आयु होने पर भी पुरुष तथा स्त्री में मन का मेल नहीं भी हो सकता है। कारण केवल प्रेम-विवाह नहीं, यद्यपि प्रेम-विवाह में कोई क्षणिक आकर्षण भी बन्धन का कारण होता है। कारण वर तथा वधू की भिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमि हो सकती है या यदि दोनों शिक्षित तथा प्रबुद्ध हों, उनका बौद्धिक अन्तर भी कड़ुवाहट पैदा कर सकता है।

तौलिया स्वच्छता का उपकरण है पर मधु इसे बहुत महत्त्व देती है और वसन्त की संस्कृति तथा सुरुचि को इसी से नापती है। यों तौलिये पति-पत्नी के बीच मन-मुटाव का कारण बनते हैं। मधु की पृष्ठभूमि उनके मामा के उल्लेख से साफ़ ज़ाहिर होती है। वसन्त का दृष्टिकोण उसके अपने दोस्तों देव तथा नारायण के साथ बिताए सुखद समय के जिक्र से प्रकट होता है। नाटककार यह बताना चाहते हैं कि मधु ने अपने उच्चवर्गीय चरित्र को बदलना चाहा पर बदल न सकी और वसन्त अपने खुलेपन तथा बेतकल्लुफ़ी को बनाये रख सका। जब तक मधु यह समझती रही कि वसन्त उससे नाराज़ है, वह अपना स्वभाव बदलने में जुट गयी और यह समझकर कि ऐसा नहीं था वह फिर पूर्ववत् हो जाती है।

कला की दृष्टि से 'तौलिये' एक अत्यन्त सफल कृति है। संस्कृति तथा शिष्टाचार पर हुई बहसें भारी नहीं लगतीं, बल्कि यह बताती हैं कि शिक्षित परिवारों में किस प्रकार की उलझनें पैदा होती हैं। पहले दृश्य के अन्त पर नाटक के आधारभूत संघर्ष को समाप्त नहीं किया गया है बल्कि उसे आगे भी निभाया गया है। एकांकी नाटक का मूल संघर्ष होता है। यदि संघर्ष धीमा हो या केवल घटना की निचली तह पर उभरे तथा केवल कड़ुवाहट के रूप में प्रकट हो तो वह नाटककार की कुशलता का प्रतीक है।

तौलिये : सहायक सामग्री

1. **टॉयलेट** (Toilet)—अंगराग या अंगसज्जा। मध्यवर्गीय घरानों में पुरुष तथा स्त्री के लिए अलग-अलग टॉयलेट नहीं ही होता है।

2. नहीं, मैं नाराज नहीं—मधु के कथन का लहजा व्यंग्य से भरा है इसलिए वह यह कहने के बावजूद नाराज है।

3. **एरिटोक्रैटिक** (Aristocratic)—उच्चवर्गीय तथा धनी। वसन्त के कहने के अनुसार मधु ऊंचे घराने से ताल्लुक रखती है और इसीलिए सफ़ाई, व्यवस्था, नाजुकी पर आवश्यकता से ज़्यादा जोर देती है।

4. **रॉकफेलर ट्रस्ट**—संयुक्त राज्य अमरीका के एक करोड़ पति रॉकफैलर द्वारा स्थापित कोष, जो शिक्षा, स्वास्थ्य आदि में नयी खोज कराने के लिए संसार भर में काम कराता है।

5. क्यों काव्य और कला को अपनी इस घृणा में घसीटती हो?—वसन्त जीवन को खुलेपन से तथा कृत्रिम बंधनों से मुक्त होकर जीना चाहता है और समझता है कि आग्रह के बिना ही सच्चे जीवन को जिया जा सकता है।

6. **वर्जना**—निषेध, मनाही। उचित अनुचित का कुछ ज्यादा ख्याल करके जब स्वतंत्र कार्य को भी बाधित किया जाए।

7. मैं कहता हूँ तुम अपना सामान बाँधने की······नाटक के पहले दृश्य के अन्त पर मधु चली जाती तो कथा एकदम मुड़ जाती और संघर्ष निर्णयात्मक हो जाता पर नाटककार इसे और बढ़ाकर अपने समाधान तक ले जाना चाहते हैं इसलिए वसन्त ही चला जाता है।

8. आदमी की आधारभूत भावनाओं पर······—सभ्यता या संस्कृति आदमी के असली साधारण रूप पर बनावटी खोल चढ़ाती है। जरा सा धनी व शिक्षित होने से एक वर्ग दूसरे को असभ्य समझता है।

मधु के ये विचार उसके पहले के विचारों के कितने विपरीत हैं जब उसने वसन्त से ऊषी और निम्मो की बदतमीजी पर बहस की थी।

9. मंगला, जरा मेरी ओर देखकर बता तो, क्या मैं......—मधु जान बूझ के अपनी प्रकृति को बदलना चाहती है कि वसन्त से उसकी टक्कर न होती रहे, पर मंगला से यों पूछती है जैसे उसे खुद मालूम नहीं।

10. मैंने ऐनक उतार रखी हैं और ऐनक के बिना......—वसन्त का यह वार्तालाप एक तो गंभीर स्थिति में हल्कापन पैदा करता है, दूसरे मधु को यह कहने का अवसर देता है कि वे पुराने, असभ्य विचारों की दुनिया में रहते है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) बोध :

1. मधु तथा वसन्त के चरित्रों की तुलना कीजिए।
2. आप की दृष्टि में नाटककार किस का पक्ष लेता है—मधु का या वसन्त का ? क्यों ?
3. नाटक में१९४३ का समय बताया गया है। क्या आप समझते हैं कि आज के समय में भी नाटक की समस्या सच है ?
4. शैली की दृष्टि से इस नाटक की समीक्षा कीजिए।

(ख) विवरणात्मक अध्ययन :

प्रसंग देकर व्याख्या कीजिए :

(क) क्यों काव्य और कला को अपनी इस घृणा में.........जीवन से घृणा की।

(ख) पशु ! तो तुम मुझे पशु......मुझे पशु समझती हो।

(ग) आदमी की आधारभूत......स्नॉबरी का दूसरा नाम है।

(घ) मैं कहता हूँ अब तुम......resistance कायम है।

विष्णु प्रभाकर

परिचय :

इनका जन्म १९१२ ई० में हुआ। ये न केवल एक सफल नाटककार और कहानीकार ही हैं बल्कि एक कर्मठ गांधीवादी राजनीतिज्ञ कार्यकर्त्ता भी रहे हैं। गांधी के जीवन और विचारधारा का प्रभाव इनकी विचारधारा तथा साहित्य में स्थान-स्थान पर मिलता है। इनके नाटकों का स्वर आशा और आदर्श का होता है। ये उन इने-गिने लेखकों में हैं, जिन्होंने आरम्भ से ही अपने लेखन को बहुत गम्भीरतापूर्वक लिया है। बहुत सी कठिनाइयों के होते हुए भी उन्होंने एक स्वतन्त्र लेखक के जीवन को स्वीकार किया है, जो न तो आसान है और न हर एक के लिए सम्भव है। प्रभाकर जी पिछले बत्तीस-तैंतीस साल से निरन्तर लिख रहे हैं—अपना लेखन ही इनके लिए एकमात्र महत्त्वकांक्षा रहा है। पहले कई साल इन्होंने सरकारी फार्म पर नौकरी की, फिर बीच में कुछ समय ड्रामा-प्रोड्यूसर के रूप में रेडियो से सम्बद्ध रहे, परन्तु वह कार्य भी इनके स्वतन्त्र स्वभाव को बाँध नहीं सका।

इन्होंने इस बीच कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, बहुत कुछ लिखा है। और इन्हें सभी क्षेत्रों में प्रसिद्धि मिली है। एकांकी के क्षेत्र में अन्य क्षेत्रों की तुलना में कहीं अधिक प्रसिद्धि मिली है। उनमें से बहुत से एकांकी जगह-जगह रंग मंचों पर खेले जा चुके हैं। रेडियो से तो प्रायः सभी प्रसारित हो चुके हैं। पिछले कुछ वर्षों ये शरतचन्द्र की एक प्रमाणिक जीवनी प्रस्तुत करने में लगे रहे हैं। ये दिल्ली में निवास करते हैं।

इनके एकांकी तथा रेडियो-रूपक-संग्रह निम्नलिखित हैं—

इनसान, रहमान का बेटा, क्या वह दोषी था, अशोक, प्रकाश और परछाई, दस बजे रात, बारह एकांकी आदि।

कलंक-मुक्ति

(ध्वनि-नाटक)

चरित्र

कृष्ण	यादव संघ का नेता
बलराम	कृष्ण के बड़े भाई
अक्रूर	एक प्रमुख यादव
शतधन्वा	एक प्रमुख यादव
देवकी	कृष्ण की माँ
सत्यभामा	कृष्ण की एक रानी
सात्यकि	एक प्रमुख यादव
तीन यादव	दो यादवो, एक उदघोषक

[प्रारम्भिक संगीत के बाद कई क्षण तक घोड़ों की टाप और रथों के चलने की ध्वनि दूर से पास आती है, फिर दूर चली जाती है, फिर पास आती है, फिर दूर चली जाती है। इसके बाद कुछ व्यक्तियों के तेज़ी से आने की पदचाप उभरती है और उसके बाद क्षणिक शांति हो जाती है, फिर कई व्यक्ति उत्तेजित स्वर में बातें करते हैं। पृष्ठभूमि में अनेक व्यक्तियों के स्वर उभरते रहते हैं।]

पहला यादव : लो बलराम और कृष्ण हस्तिनापुर से लौट भी आए।

दूसरा यादव : सत्यभामा जब उन्हें लिवा लाने को गई थी तो उन्हें लौटना ही था।

तीसरा यादव : अब शतधन्वा की मृत्यु निश्चित है।

प० यादव : लेकिन, वह तो यहाँ है ही नहीं।

दू० यादव : कहीं भी हो, कृष्ण उसे नहीं छोड़ेंगे। उसने उनके ससुर की हत्या की है।

ती० यादव : (हँसकर) नियति भी कैसा व्यंग्य करती है। वह उसका ससुर होने वाला था। सत्यभामा शतधन्वा की वाग्दत्ता थी।

प० यादव : वाग्दत्ता शतधन्वा की थी, परन्तु पत्नी कृष्ण की है और सच तो यह है कि सत्यभामा है भी कृष्ण के योग्य।

दू० यादव : ठीक कहते हो। कृष्ण हमारे संघ का नेता है। संघ के बाहर भी उसकी पूजा होती है, इसलिए हर सुन्दरी उसी की है।

(अट्हास, फिर रथ की ध्वनि, घोड़ों की टाप उभरती है फिर सब कुछ रुक जाता है।)

बलराम : कहो सात्यकि, शतधन्वा कहाँ है? सुना है वह यहाँ से भाग गया।

सात्यकि : हाँ आर्य, आपके आने का समाचार पाते ही वह यहाँ से चला गया। पहले तो उसने आप से युद्ध करना चाहा था और

इसीलिए वह सेनापति कृतवर्मा के पास गया था। लेकिन उसने कह दिया कि कृष्ण से शत्रुता करना मेरी शक्ति से बाहर है।

बलराम : लेकिन शायद सत्राजित की हत्या करने की सलाह देते समय उसने यह नहीं सोचा था।

सात्यकि : हाँ यह सलाह उसी ने दी थी। उसने यहाँ तक कहा था कि कृष्ण, बलराम हस्तिनापुर गए हुए हैं। उनके लौटने से पहले ही तुम सत्राजित को मार कर अपना प्रतिशोध ले लो। सत्यभामा तुम्हारी वाग्दत्ता थी। उसका कृष्ण के साथ विवाह करके उसने तुम्हारा अपमान किया है।

बलराम : यदि यही बात थी तो उसे कृष्ण को चुनौती देनी चाहिए थी।

सात्यकि : कृष्ण की शक्ति को कौन चुनौती दे सकता है ? इसके अतिरिक्त महामति अक्रूर ने उससे कहा था कि इसमें कृष्ण का अपराध नहीं है, अपराध सत्राजित का है।

बलराम : (हँसकर) चाचा बहुत चतुर हैं। सुना है, शतधन्वा उनकी भी शरण में गया था।

सात्यकि : लेकिन उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि वह कृष्ण के विरुद्ध किसी की सहायता नहीं कर सकते। उनके आने से पहले उसे यहाँ से भाग जाना चाहिए।

बलराम : तो, यह भी चाचा की ही सलाह थी, लेकिन वह भागकर कहीं नहीं जा सकता। उसने कृष्ण के ससुर की हत्या की है। मैं उसे त्रिलोक में भी नहीं छोड़ूंगा। कहाँ है कृष्ण ?

कृष्ण : (दूर से आता हुआ स्वर) मैं यह रहा, भैया।

बलराम : रथ तैयार करने की आज्ञा दो। हम दोनों शतधन्वा का पीछा करेंगे। उसका वध करना ही होगा।

कृष्ण : लेकिन, भैया···

बलराम : रक्त का प्रतिशोध रक्त से ही होता है कृष्ण। सारथी से कहो कि वह रथ जोड़ लें। मैं सत्यभामा की आँखों में आँसू नहीं देख सकता।

सत्यभामा : हाँ आर्य, मैं पिता की मृत्यु का प्रतिशोध चाहती हूँ। शतधन्वा कायर है। उसे मुझसे प्रेम था तो मेरे पति को ललकारा होता मेरे पिता से युद्ध किया होता। वीर पुरुष सोते हुए सिंहों का वध नहीं किया करते। उसने मेरे सोते हुए पिता का सिर काटा है।

बलराम : वह कायर था, इसीलिए तो भाग गया है।

कृष्ण : शुभे, अब तुम चिन्ता मत करो। भैया ने जब निश्चय कर लिया है, तो शतधन्वा की रक्षा कोई भी नहीं कर सकता। हम उसका वध करके ही लौटेंगे।

बलराम : और मणि लेकर भी। तुम्हारे पिता की स्वयमन्तक मणि भी तो वही ले भागा है।

सात्यकि : रथ तैयार है आर्य।

बलराम : आओ कृष्ण।

कृष्ण : चलो भैया।

[जाने की पदचाप उभरती है, फिर घोड़ों की टापें तेज होती हैं। होती जाती हैं, धनुष की टंकार सुनाई देती है। रथ पास आकर फिर दूर चले जाते हैं। स्वर उभरते हैं।]

कृष्ण : भैया, वह देखो।

बलराम : देख रहा हूं, उसके रथ की चाल धीमी पड़ रही है। शायद घोड़े थक गए हैं। अपना रथ और तेज करो।

[रथों के तेज होने की आवाज। बीच बीच में वीरों की हुंकार। फिर जैसे रथ के गिरने का आभास।]

बलराम : लो, उसका घोड़ा गिर गया।

कृष्ण : भैया, मैं अब पैदल ही उसका पीछा करना चाहता हूं ।

बलराम : उसकी मृत्यु आ पहुंची है । तुम जा सकते हो ।

[रथ से कूदने और भागने का आभास ।]

कृष्ण : ठहरो शतधन्वा । वीर पुरुष भागा नहीं करते । ठहरो, कितना ही भागो, मैं तुम्हें छोड़ूंगा नही ।

शतधन्वा : **(हाँफते हुए)** तो तुम आ ही पहुंचे कृष्ण ! अच्छी बात है आओ । मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि तुम्हें जीता नहीं छोड़ूंगा । तुमने मेरी वाग्दत्ता का हरण किया है । तुम वध्य हो ।

कृष्ण : **(हँस कर)** कायरों की भाँति भागकर संभवत: तुम मेरा वध करने के लिए ही यहाँ आए हो **(दोनों के हाँफने का आभास)** ।

शतधन्वा : कृष्ण तुम तन्त्र के अधिष्ठाता हो, पद का दुरुपयोग करके शायद तुमने वीरता का परिचय दिया है । मैं तुम्हें जीवित नहीं लौटने दूँगा ।

कृष्ण : **(हँस कर)** शतधन्वा, तुमने सोते हुए शेरों का वध करना सीखा है, जागते हुओं का नहीं । **(भागने की ध्वनि)** और तुम फिर भागने लगे, ठहरो शतधन्वा ! ठहरो, नहीं तो यह आता है मेरा चक्र । **(चक्र के चलने की तीव्र ध्वनि और फिर एक चीख)** गया बेचारा । यह भी उसी मार्ग पर गया । अब देखूँ मणि कहाँ है । **(क्षणिक विराम)** इसके पास मणि तो दिखाई नहीं देती । न, न, यहाँ भी नहीं है, तो कहाँ है । कहाँ है मणि ? अब मैं भैया को क्या जवाब दूँगा ? मणि कहाँ गई ? कहाँ गई मणि !

[गूँज, अन्तराल संगीत, फिर कई व्यक्तियों के अट्टहास का स्वर उठता है ।]

प० यादव : तुमने सुना, शतधन्वा को मार कर कृष्ण लौट आए। मैंने उनको अभी अकेले ही संघपति महाराज अक्रूर के पास जाते देखा है ।

दू० यादव : कृष्ण को कोई नहीं जीत सकता। वह वृष्णियों का ही नहीं, सभी यादवों का नेता है। संघ के बाहर भी उसकी पूजा होती है।

प० यादव : लेकिन वह कहता है, मणि शतधन्वा के पास नहीं थी।

दू० यादव : वह बड़ा चतुर है। इस मणि के कारण उसे दो-दो पत्नियाँ मिल चुकी हैं···

ती० यादव : तो उससे क्या, उसको कितनी ही पत्नियाँ मिल सकती हैं। वह सुन्दर है, वीर है, प्रतिभाशाली भी है। लेकिन मणि कहाँ है ?

दू० यादव : हाँ, प्रश्न तो यही है। आखिर मणि कहाँ है ? **(हँसते हैं)**

प० यादव : जानते हो, जब उसने बलराम से यह कहा, कि शतधन्वा के पास मणि नहीं है तो उन्होंने क्या कहा ?

ती० यादव : क्या कहा ?

प० यादव : उन्होंने कहा, तुम झूठ बोलते हो। उनका यह विश्वास है कि कृष्ण ने मणि चुरा ली है।

दू० यादव : क्या बलराम को भी कृष्ण पर विश्वास नहीं। **(हँस कर)** यादव किसी का विश्वास नहीं करते। अरे वह देखो, कृष्ण इधर ही आ रहे हैं। विजय पर विजय और सुन्दरी पर सुन्दरी पाकर भी उनका मुख कैसा लाल हो रहा है। वह शायद सत्यभामा के महल की ओर जा रहे हैं। आओ, हम लोग उनके मार्ग से हट जाएँ और सुनें कि वह क्या कह रहे हैं। **(पीछे हटने और फिर किसी के धीरे-धीरे आने की पदचाप।)**

कृष्ण : (स्वगत) आखिर यह सब क्या है। इस मणि के कारण प्रसेन, सत्राजित और शतधन्वा जैसे वीर मारे गए। इस मणि ने यादवों की बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया है। भैया बलराम तक मुझे चोर समझते हैं। हैं तो आखिर वे भी यादव ही। धन, शक्ति, रूप और ऐश्वर्य—इन सबने यादवों को उन्मत्त कर

दिया है। ऐसा लगता है कि उनका सर्वनाश समीप है। मैं क्या कर सकता हूं ? जो होना हो, हो। लो, सत्यभामा तो इधर ही आ रही है। पिता के शोक में व्याकुल सुन्दरी सत्यभामा की मुखश्री कैसी मुर्झा गई है। चलूँ इसे भी शुभ समाचार दूँ। **(पदचाप उभरते हैं)** शुभे, प्रसन्न हो, तुम्हारे पिता का हत्यारा इस लोक में नहीं रहा।

सत्यभामा : वार्ष्णेय की जय हो। मैं सब सुन चुकी हूं। अपने प्रियतम से मुझे यही आशा थी।

कृष्ण : लेकिन सत्यभामा…

सत्यभामा : मौन क्यों हो गए, आर्य पुत्र ! लेकिन क्या ?

कृष्ण : यही कि शतधन्वा के पास मणि नहीं मिली।

सत्यभामा : **(अविश्वास से)** शतधन्वा के पास मणि नहीं मिली ?

कृष्ण : हाँ, मैंने बहुत खोजा। वह उसके पास नहीं थी।

सत्यभामा : मणि तो उसी के पास थी।

कृष्ण : विश्वास तो मेरा भी यही है।

सत्यभामा : और आपने ही उसका वध किया है।

कृष्ण : हाँ, मैंने अकेले ही उसका वध किया है।

सत्यभामा : तब मणि और कहाँ जा सकती है ?

कृष्ण : **(व्यथित होकर)** सत्यभामा !

सत्यभामा : **(काँप कर)** आर्य पुत्र !

कृष्ण : भैया की तरह क्या तुम भी मानती हो कि मैं झूठ बोल रहा हूं, कि मैंने मणि छिपाई है, कि मैं मणि अपने पास रखकर…

सत्यभामा : **(विकल होकर)** नहीं, नहीं, देव, मेरा यह आशय नहीं। मैं तो केवल यही कह रही थी कि मणि उसके पास नहीं मिली तो कहाँ गई ?

कृष्ण : सभी यह कहते हैं। सभी मुझ पर अविश्वास करते हैं। जो मेरे विरोधी हैं, वे भी। जो मेरे साथी हैं, वे भी। मैं तुम्हें दोष नहीं देता सत्यभामा। इस मणि के कारण तुम्हारे पिता की मृत्यु हुई। इस मणि के कारण तुम शतधन्वा की पत्नी होने से वंचित हो गई।

सत्यभामा : (दृढ़ होकर) वह जो कुछ हुआ, मेरी इच्छा से हुआ। मैंने शतधन्वा को कभी नहीं चाहा।

कृष्ण : लेकिन उसने तो चाहा था।

सत्यभामा : तो इससे क्या, यादवी जिसे चाहती है, उसी का वरण करती है।

कृष्ण : फिर भी तुम्हारे लिए उसने तुम्हारे पिता का बध किया। मुझे चुनौती दी, लेकिन मणि कहाँ छिपाकर रख गया! किसको दे गया ?

सत्यभामा : अब रहने दीजिए, मणि की बात। किसी को दे गया होगा।

कृष्ण : नहीं, उसको खोजना होगा, नहीं तो बड़े परिश्रम से जिस यादव संघ को मैंने संगठित किया था, वह छिन्न-भिन्न हो जाएगा, लेकिन मैं ऐसा नहीं होने दूँगा। मैं मणि का पता लगाऊँगा। तुम्हारी शंका ठीक है। भैया की भी शंका ठीक ही है। आखिर वह मणि कहाँ गई! कहाँ गई ? **(वातावरण में 'कहाँ गई मणि', 'कहाँ गई मणि', के स्वर गूँजते हैं। फिर अन्तराल संगीत उभरता है, फिर अनेक मदोन्मत्त कण्ठ उभरते हैं।)**

प० यादव : मैं विश्वास के साथ कहता हूँ, मणि कृष्ण ने ही ली है। वह महाधूर्त है।

प० यादवी : **(व्यंग्य से)** नहीं-नहीं। कृष्ण चोर नहीं है। मणि उसने छिपा दी है। जनम का छलिया है। गोपियों के कपड़े तक उसने छिपा दिए थे।

दू० यादव : और माखन किसने चुराया था ?

दू० यादवी : वह माखन चोर कोई और था। यह तो मणि चोर है।

प० यादवी : और हृदय चोर भी। (**अट्टहास-ध्वनि गूँजती है**)

दू० यादव : वह बहुत कुछ हो सकता है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं हो जाता कि वह हमारा अपमान करे।

प० यादव : हाँ, उसने मणि को छिपा कर हमारा अपमान किया है।

दू० यादव : हम अपमान का प्रतिशोध लेंगे।

प० यादवी : (**हंसकर**) तुम कुछ नहीं कर सकते। उसके सामने आते ही तुम उसे प्रणाम करोगे।

दू० यादवी : और फिर वह मुस्कराकर तुम्हारा कुशल समाचार पूछेगा और फिर कोई यादवी उससे विवाह कर लेगी। (**फिर अट्टहास उठता है**)

प० यादव : (**क्रुद्ध होकर**) बन्द करो यह अनर्गल प्रलाप, कृष्ण को इस बार पदच्युत होना ही होगा, नहीं तो उसे बताना होगा कि मणि कहाँ है।

प० यादवी : लेकिन पूछेगा कौन ? उसके आने का समाचार पाते ही महावीर कृतवर्मा घर छोड़ कर भाग गए। महामति अक्रूर कहाँ गए, कोई नहीं जानता। शतधन्वा का वध हो चुका है। ऐसी स्थिति में उसे पदच्युत करने की बात कहते हो।

प० यादव : हम अभी जनसभा आमंत्रित करने की मांग करते हैं। वहीं इस प्रश्न का निर्णय होगा। (**तेज़ी से जाने की पदचाप, यादवियों के हंसने का स्वर**)

प० यादवी : जाइए, कीजिए प्रबन्ध।

दू० यादवी : लेकिन सखी, इनकी बात भी ठीक है। कृष्ण कितने ही चतुर हों, वीर हों, मणि कहाँ गई, इसका पता तो लगाना ही चाहिए। देवी सत्यभामा स्वयं बहुत चिन्तित हैं। वह कृष्ण पर सन्देह भी करती हैं और करना चाहती भी नहीं।

प० यादवी : सचमुच यह समस्या है तो जटिल। आखिर वह सुन्दर मणि कहाँ गई। आओ माता देवकी की ओर चलें। अरे वह देखा, देवी सत्यभामा भी उधर ही जा रही हैं। (**रथ के जाने का स्वर उठता है और फिर दूर से पदचाप पास आती है।)**

सत्यभामा : आर्या की जय हो। मैं आपके चरणों में प्रणाम करती हूं।

देवकी : अपने पति की प्रिया हो। आओ सत्यभामा। सुना कि तुम बहुत उदास हो।

सत्यभामा : आर्या, सचमुच मैं बहुत दुःखी हूं। मेरे पिता की मणि को लेकर यदुकुल बहुत उत्तेजित हो उठा है। सब आर्यपुत्र पर शंका करते हैं कि उन्होंने मणि छिपा ली है और आर्य पुत्र कहते हैं कि शतधन्वा के पास मणि नहीं थी। नहीं थी तो कहाँ गई!

देवकी : यह तो मैं भी नहीं समझ पाती। लेकिन, इतना अवश्य जानती हूं कि कृष्ण झूठ नहीं बोल सकता।

सत्यभामा : लेकिन मैं हर किसी मुँह नहीं पकड़ सकती। हर व्यक्ति उन पर कटाक्ष करता है। मैं यह नहीं सह सकती। इसलिए और नहीं सह सकती कि मैं सत्राजित की पुत्री हूँ और उन्होंने एक बार आपके पुत्र पर झूठ मूठ सन्देह किया था।

देवकी : तुम्हारे मन की जो अवस्था है, मैं समझ सकती हूँ। लेकिन तुमको कृष्ण का विश्वास करना चाहिए। वह पता लगाने के लिए कुछ न उठा रखेगा।

सत्यभामा : लेकिन यही पता लगाते लगाते यादव-संघ बल परीक्षा के लिए आतुर न हो जाए। विलासिता विवेक को नष्ट कर देती है।

देवकी : यही कृष्ण भी कहता है। वह अभी आने वाला है।

सत्यभामा : क्या वे यहाँ आ रहे हैं?

देवकी : हाँ, वह इसी सम्बन्ध में सलाह करने आ रहा है। वह स्वयं ही गृह कलह से बहुत डरता है, इसलिए वह अवश्य कोई न

कोई रास्ता निकाल लेगा। जब सब हार जाते हैं तब वह किसी न किसी तरह सफल हो ही जाता है। बचपन से ही संकटों में पला है। इसने क्या नहीं सहा। पर हर संकट उसकी प्रतिभा के लिए चुनौती बनकर आता है और वह उस चुनौती को अपनी सफलता का साधन बना लेता है।

सत्यभामा : यही विश्वास तो मुझे अब तक जीवित रखे हुए हैं; नहीं तो पौरजनों के व्यंग्य बाण मुझे कभी का नष्ट कर देते। अच्छा मैं चलती हूँ। इस समय उनके सामने आना ठीक नहीं होगा। मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

देवकी : चिन्ता मुक्त होकर जाओ। लेकिन नहीं, तुम अभी पास के कक्ष में ठहरो। **(जाने की पदचाप उभरती है। क्षणिक विराम के बाद फिर किसी के आने की पदचाप उभरती है।**

कृष्ण : प्रणाम करता हूँ माँ। कैसी हो ?

देवकी : अच्छी हूँ, तू बता न, क्या किया ?

कृष्ण : अब तुम ही बताओं मैं क्या करूँ ?

देवकी : कुछ तो करना ही होगा। सत्यभामा बहुत दुःखी है और बलराम अभी तक नहीं लौटा।

कृष्ण : इसी का तो मुझे दुःख है माँ। भैया भी मुझ पर विश्वास नहीं करते, लेकिन मुझे सूचना मिली है कि बहुत शीघ्र लौट रहे हैं, आज या कल यहाँ पहुँच जाएँगे। पर उनके साथ-साथ चाचा अक्रूर भी लौटें तो बहुत अच्छा होता।

देवकी : अक्रूर का इससे क्या सम्बन्ध है ?

कृष्ण : सम्बन्ध है माँ, और उसी की चर्चा करने मैं तुम्हारे पास आया हूँ।

देवकी : (चकित होकर) तू क्या कहना चाहता है ?

कृष्ण : मुझे सन्देह है कि मणि चाचा के पास है।

देवकी : लेकिन इस सन्देह का आधार क्या है ? लोग तो यही कहते हैं कि मणि तेरे पास है ।

कृष्ण : लोगों की बात मैं नहीं जानता, लेकिन मेरे सन्देह का आधार है । मेरे आने का समाचार पाकर सेनापति कृतवर्मा घर छोड़ कर चले गए थे । मैंने पता लगा लिया कि मणि उनके पास नहीं थी । हो भी नहीं सकती थी । वे हमारे विरोधी हैं और मेरी मान्यता है कि वह मणि हमारे किसी हितैषी के पास है । चाचा अक्रूर से बढ़कर हमारा कौर कोई हितैषी नहीं है ।

देवकी : हाँ कृष्ण । यादव-संघ में हमारा सबसे बड़ा हितैषी वही है, लेकिन तू जानता है वह कहाँ है ?

कृष्ण : जानता हूँ, वे प्रयाग में तीर्थवास कर रहे हैं । कई बार सन्देशा भेज चुका, लेकिन वे आते ही नहीं ।

देवकी : उसे आना होगा । तू रथ तैयार करने की आज्ञा दे । मैं उसे लेने जाऊँगी ।

कृष्ण : नहीं माँ, तुम्हें नहीं जाना होगा । तुम्हारा सन्देशा ही काफी होगा ।

देवकी : तो फिर तू मेरी ओर से सन्देशा भिजवा दे कि वह दिन नहीं भूली हूँ जब तुम मेरे बलराम और कृष्ण को वृन्दावन से ले आए थे । कंस के कोप से मेरी रक्षा की थी । उसी दिन की याद दिलाकर मैं कहती हूँ कि एक बार फिर मेरे राम और कृष्ण की रक्षा के लिए तुम्हें द्वारका आना होगा । उन्हें कलंक से मुक्त करना होगा । यादव संघ को गृह युद्ध से बचाना होगा ।

कृष्ण : ठीक है माँ, मैं अभी सात्यकि को भेजता हूँ । यह सन्देशा पाकर चाचा नहीं रुक सकेंगे । और उनके आने पर सब समस्या सुलझ जाएगी । अच्छा मैं चलूँ, प्रणाम करता हूँ ।

देवकी : यशस्वी हो। (**जाने की पदचाप, फिर किसी के आने की पदचाप।**)

सत्यभामा : अब मुझे भी जाने की आज्ञा दीजिए। वे निश्चय ही मेरी ओर गए होंगे।

देवकी : लेकिन तुमने सुन लिया न, अब चिन्ता की कोई आवश्यकता नहीं।

सत्यभाम : मैंने सब कुछ सुन लिया। मुझे लगता है कि समस्या सचमुच ही सुलझ जाएगी। अच्छा प्रणाम करती हूँ।

देवकी : अपने पति की प्रिया हो। (**जाने की पदचाप उभरती है। क्षणिक विराम के बाद देवकी स्वतः बोलने लगती है।**)

देवकी : (**स्वगत**) कितना सरल और साथ ही कितना प्रभावशाली। बड़ा कठिन हो जाता है इसको पहचानना। इसी के कारण तो आज यादव-संघ इतना शक्तिशाली हो उठा है, लेकिन शक्ति और विलासिता दोनों एक साथ नहीं रह सकते। इस विलासिता ने यादवों की बुद्धि हर ली है। सब एक-दूसरे पर शंका करते हैं। बलराम कृष्ण पर शंका करता है। वह बलराम जो प्रतिक्षण कृष्ण पर प्राण न्यौछावर करने के लिए तैयार रहता है। दोनों की राह कभी एकदम भिन्न हो जाती है, लेकिन प्रेम में कभी अन्तर नहीं होता। बड़े से बड़ा मतभेद होने पर भी बलराम कृष्ण के रास्ते में नहीं आता, उसी की बात चलने देता है। कितना बड़प्पन है इस बलराम में। इसीलिए मैं सोचती हूँ अब सब ठीक हो जाएगा, बस अक्रूर के आने की देर है।

(अन्तराल का संगीत, दमामे पर चोट पड़ती है। उद्घोषक का स्वर पास आता है।)

उद्घोषक : सुनें, सुनें, सब यादव वीर सुनें। भोज, अंधक और वृसिण सभी वीर सुनें। कल यादव संघ की जन सभा का आयोजन किया

गया है। महावीर बलराम, महापति अक्रूर और सेनापति कृतवर्मा आदि सभी यादव नेता यात्रा से लौट आए हैं। मणि को लेकर जो उत्तेजना यादव-संघ में उभर आई है, उसी पर विचार करने के लिए इस सभा का आयोजन किया गया है। मणि के मिलने की पूर्ण आशा है। सुनें, सुनें, यादव-संघ के सभी वीर सुनें। भोज, अंधक और वृष्णि सभी सुनें, कल जन-सभा के आयोजन में उनकी उपस्थिति अनिवार्य है। सुनें सुनें, भोज, अंधक और वृष्णि सभी यादव वीर सुनें। **(धीरे-धीरे स्वर दूर हटता जाता है और यादवों की गोष्ठी का कोलाहल उठता है।)**

प० यादव : तो कल जन सभा का अधिवेशन होगा।

दू० यादव : और उस जन सभा में महामति अक्रूर उपस्थित रहेंगे।

ती० यादव : और सुनते हैं मणि भी मिल जायगी।

प० यादव : मिलेगी क्यों नहीं। मणि कृष्ण के पास है।

दू० यादव : यह तुम कैसे कह सकते हो? मणि उसके पास होती तो अब तक क्यों छिपाता?

ती० यादव : मुझे तो ऐसा लगता है कि मणि अक्रूर के पास है।

प० यादव : नहीं, महामति अक्रूर ऐसा नहीं कर सकते। मणि कृष्ण के पास है। वह किसी और प्रिया को प्रसन्न करना चाहता है। **(हंसी)**

ती० यादव : नहीं, मणि अक्रूर के पास है।

प० यादव : (तीव्र होकर) तुम झूठ बोलते हो। मणि कृष्ण के पास है।

दू० यादव : शान्त-शान्त, मणि किसके पास है, कल पता लग जायगा। तब तक बिराम-सन्धि कर लेनी चाहिए। आओ, आओ, सब लोगों को इसकी सूचना दें। **(अन्तराल संगीत, इसके बाद जन सभा का कोलाहल उठता है।)**

प० यादव : देखो-देखो, सभी लोग आ गए हैं। उधर महावीर बलराम हैं। अभी तक उनके मस्तक के बल नहीं खुले। लेकिन मुख पर वैसा ही तेज है। मानो अभी युद्ध के लिए ललकार उठेंगे।

दू० यादव : और वह महामति अक्रूर संघ के नेता के पास ऊँचे आसन पर ऐसे बैठे हैं, जैसे इन्द्र के पास बृहस्पति बैठे हों। मुख पर कैसी गम्भीरता है, लेकिन नयनों से स्नेह छलका पड़ता है।

ती० यादव : और उस कृष्ण को देखो, वह जो यादवों का नेता है, संघ के बाहर भी जिसकी पूजा होती है, उस कृष्ण को देखो। सभी यादव उसकी ओर देख रहे हैं। उसका शान्त, गम्भीर मुख अद्‌भुत रूप से आकर्षक लग रहा है। उसकी बलिष्ठ मांसल भुजाएँ केयूरों के बन्धन में फँसकर कैसी सुडौल हो उठी हैं। उसके विशाल वक्षःस्थल पर स्वर्णहार और पुष्प मालाएँ सुशोभित हो रहे हैं। उसने अपने उत्तरीय को ढीला कर लिया है। सुनो, सुनो वह कुछ कह रहा है। उसकी वाणी गम्भीर किन्तु प्रखर है।

कृष्ण : यादव वीरो! आप जानते हैं कि इधर सत्राजित की स्वयमन्तक मणि को लेकर संघ में कितना वैमनस्य बढ़ गया है। अनेक वीरों का विश्वास है कि मणि मैंने ली है। परन्तु मणि मेरे पास नहीं है। लेकिन प्रश्न यह है कि वह मणि है कहाँ? मणि शतधन्वा के पास थी। और उसका वध मैंने किया तब मणि मैंने नहीं ली तो किसने ली? शंका का यह कारण काफी सबल है। लेकिन आप यह क्यों भूल जाते हैं कि जब तक मैं शतधन्वा के पास पहुंचा तब तक वह अनेक यादव वीरों से मिल चुका था। सेनापति कृत वर्मा से उसने शरण माँगी की। दूसरे अनेक वीरों से भी उसने शरण माँगी होगी वह किसी को भी मणि दे सकता था और मैं कहता हूँ कि उसने दी है। **(सभा में शोर होता है।)** शान्त रहिए। मैं जानता हूँ उसने मणि किसे दी है। आज उस व्यक्ति को मैंने पालिया है। कहूँगा। कृपा कर

वह व्यक्ति स्वयं चलकर मेरे पास आ गया है। **(सभा में फिर शोर उठता है।)**

प० यादव : कौन है वह व्यक्ति ?

दू० यादव : उसका नाम बताइए।

कई स्वर : हाँ, हाँ, उसका नाम बताइए।

कृष्ण : शान्त, यादव वीरो शान्त ! **(मुड़ कर)** चाचा अक्रूर, मैं जानता हूँ। मणि आपके पास है। यह भी जानता हूँ कि आपने इसे चुराया नहीं है। शतधन्वा स्वयं उसे आपके पास डाल कर चला गया था। वह जानता था कि यह मणि यादव संघ में गृहकलह का कारण हो सकती है। उसी गृह युद्ध से यादव संघ की रक्षा करने के लिए आप उसे लेकर तीर्थ करने चले गये। लेकिन अब मेरी प्रार्थना है कि मेरा कलंक दूर करने के लिए उस मणि को संघ के सामने उपस्थित कर दीजिए।

[गहन सन्नाटा। कुछ लोग फुसफुसाते हैं।]

प० यादव : उसकी बात ठीक है। मणि अक्रूर के पास है। वह देखो, उन्होंने उस परम देदीप्यमान वस्तु को निकाल कर वेदी पर रख दिया है। जन सभा जैसे आलोकित हो उठी।

दू० यादव : लेकिन सबके मस्तक लज्जा से झुक गए हैं। हम सभी ने कृष्ण पर सन्देह किया था।

तीं० यादव : महावीर बलराम की ओर देखो, वह कृष्ण की ओर कैसे देख रहे हैं। मानो क्षमा माँग रहे हों। अहा, उन्होंने आँखें मूँद लीं। उनसे बहता हुआ जल उनके मुख की लज्जा को जैसे धो रहा हो।

प० यादव : सुनो सुनो, महामति अक्रूर कुछ कह रहे हैं।

अक्रूर : यादव वीरो, यह सच है कि जब शतधन्वा भागे थे तो इस मणि को मेरे पास फेंक गये थे। उस समय यादव संघ में एक भयंकर संघर्ष पैदा होने की आशंका थी। सत्राजित की मृत्यु में मेरा

भी हाथ समझा जाता था। ऐसी अवस्था में द्वारका में मेरा रहना गृहयुद्ध का कारण हो सकता था। इसीलिए मैं चला गया था। अब तीर्थरन करके लौटा हूँ। मणि जन सभा के सामने है। (मुड़कर) कृष्ण, इस मणि की मुझे तनिक भी चाह नहीं। अधिकार से वह आपकी है। आप जो चाहें करें। इसके कारण आपको जो कष्ट हुआ, उसके लिए मैं खेद ही प्रकट कर सकता हूँ। मेरा और कोई उद्देश्य नहीं था।

कृष्ण : महामति अक्रूर, आपने जो कुछ कहा, वह ठीक ही है। आपने जो कुछ किया, वह भी संघ की रक्षा के लिए किया, लेकिन इस मणि की मुझे भी कोई आवश्यकता नहीं। **(सहसा सभा में फिर शोर उठता है।)**

प० यादव : क्या कहा, कृष्ण मणि नहीं चाहते। फिर इसका अधिकारी कौन है ?

दू० यादव : न्याय के अनुसार मणि पर अधिकार संघपति उग्रसेन का है।

ती० यादव : लेकिन संघ की एक शाखा के नायक कृष्ण के पिता वसुदेव हैं। उनका भी मणि पर अधिकार है। अधिकार बड़े भाई बलराम का भी हो सकता है।

प० यादव : देखो भाई, मणि अत्यन्त सुन्दर है और हम सबमें सुन्दर है प्रद्युम्न। सुन्दर वस्तु सुन्दर मनुष्य को ही मिलनी चाहिए।

दू० यादव : इस दृष्टि से तो वह सुकुमार को मिलनी चाहिए। वह सुन्दर होने के साथ-साथ सुकुमार भी है।

ती० यादव : मेरी राय में तो सुन्दर वस्तु वीर पुरुष को मिलनी चाहिए। सात्यकि परम वीर है और कृष्ण का सखा भी।

प० यादव : इस समय तो सबसे सुन्दर और सच्चे वीर कृष्ण ही हैं। देखो वह फिर कुछ कहने के लिए खड़े हो गए।

कृष्ण : यादव संघ के सभासदो, भोज, अंधक और वृष्णि वीरो आप मुझसे सहमत होंगे कि यह मणि योग्यतम व्यक्ति को ही मिलनी

चाहिए। यादव संघ के योग्यतम व्यक्ति कौन हैं ? यह आप जानते ही होंगे। **(सभा में तीव्र कोलाहल उठता है।)** शान्त, शान्त ! आप वे दिन नहीं भूले होंगे, जब यादव संघ पर विपत्तियों के बादल मंडरा रहे थे। हमारा ऐश्वर्य, हमारी संपदा और शक्ति सब नष्ट हो चुके थे, हमारा पौरुष बेकार था। हमारी बुद्धि कुण्ठित थी, संघ महानाश की ओर अग्रसर हो रहा था और मामा कंस यदुकुल का काल बन चुके थे। ऐसे समय में केवल एक वीर पुरुष था, जिसने उनके अत्याचार के विरुद्ध अपनी एकाकी वाणी बुलन्द की। साम-दाम, दण्ड-भेद से उससे लोहा लिया और यादव-संघ को तब तक जीवित रखा, जब तक वह स्वयं जाकर भैया बलराम और मुझे वृन्दावन से नहीं ले आए। वह वीर और विज्ञ पुरुष आज आपके सामने उपस्थित हैं। **(क्षणिक विराम, गहन सन्नाटा और पृष्ठभूमि में संगीत)** आप सब उन्हें जानते हैं। वह महात्मा अक्रूर हैं। मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ। वे इस रत्न को ग्रहण करें।

(सहसा सन्नाटा भंग हो जाता है। एक क्षण में सब सामूहिक स्वर में पुकार उठते हैं।)

साम० स्वर : अद्भुत, यही ठीक है, यही उचित है। यही कृष्ण की विशेषता है। इसी के कारण संघ के बाहर भी उसकी पूजा होती है। **(धीरे से फुसफुसाते हैं)** कृष्ण की जय हो। यादव संघ का वास्तविक संघपति कृष्ण ही है। कृष्ण की जय हो।

[समाप्ति सूचक संगीत]

●

कलंक-मुक्ति : नाटक-परिचय

'कलंक मुक्ति' विष्णु प्रभाकर का एक प्रतिनिधि रेडियो नाटक है। रेडियो नाटक ध्वनि-रूपक भी कहा जाता है क्योंकि इसे रेडियो पर ध्वनि द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। रेडियो नाटक केवल श्रोता के लिए होता है

अर्थात् इसे केवल सुना जाता है जब कि मंच नाटक सुना तथा देखा भी जाता है। ध्वनि ही इसका माध्यम होती है इसलिए श्रोता अलग अलग चरित्र को उसकी आवाज़ की भिन्नता से पहचानता है।

'कलंक मुक्ति' भगवान कृष्ण से संबंधित एक प्रसंग को आधार बना कर लिखा गया है। कृष्ण की पत्नी सत्यभामा के पिता सत्राजित की शतधन्वा द्वारा हत्या होने के बाद एक मूल्यवान तथा महत्त्वपूर्ण मणि---स्वयमन्तक मणि—खोजाती है। सत्राजित से चुराकर शतधन्वा ने और शतधन्वा को मार कर कृष्ण ने ली होगी, यह विश्वास यादव-संघ में फैल जाता है और कृष्ण पर सन्देह होने लगता है। पर कृष्ण 'यादवों का नेता है; संघ के बाहर भी जिसकी पूजा होती है।' इसलिए अपने बुद्धिबल से समझ लेता है कि मणि संघ के कोई हितैषी, जैसे अक्रूर, ले सकते हैं कि यादवों में गृहयुद्ध टल जाय। संघ की जन तांत्रिक सभा में घोषणा होती है और कृष्ण का अनुमान सही निकलता है। पर वे अपनी कुशल दृष्टि से संघ को और भी बाँधते हैं, मणि अक्रूर के ही हाथों सौंपते हैं। इस प्रकार उनकी राजनयिक बुद्धि की भी धाक बैठती है और उनकी अपनी कलंक मुक्ति भी हो जाती है।

इस नाटक की कथा पौराणिक है, पर उसे आधुनिक दृष्टि से देखा गया है। बुद्धि तथा चतुरता अवसर नहीं चूकती और प्रकट हो ही जाती है। दूसरे यह कि जन साधारण किसी को क्षमा नहीं करता, भगवान भी कलंक का पात्र हो सकते हैं। तीसरे यह कि जनतंत्र आधुनिक या पश्चिमी विचार ही हो ऐसा आवश्यक नहीं। भारत में संघ-व्यवस्था जनतंत्र का उत्तम उदाहरण थी।

रेडियो-नाटक की कथा को समय के पट पर फैलाने का काम संगीत-प्रभाव या ध्वनि-प्रभाव करते हैं। प्रस्तुत नाटक में उनका सही प्रयोग किया गया है। युद्ध, घोड़ों की टापें, धनुष की टंकार, सम्मिलित स्वर, दमामे की चोट आदि के ध्वनि प्रभावों से उचित वातावरण की सृष्टि हो जाती है।

नाटक के सभा दृश्यों की पुरानी यूनानी नाटकों या यूरोपी नाटकों से तुलना की जा सकती है। इनमें वक्ताओं की भाषण कला तथा श्रोताओं के प्रभावित होने का अच्छा अंकन हुआ है।

कलंक-मुक्ति : सहायक सामग्री

1. **यादव संघ**—यदु वंश के सदस्यों का एक जनतांत्रिक संगठन था, कृष्ण जिसके नेता थे। संघ का जीवन सामूहिक था, नियम सामूहिक थे, जो सामूहिक मत से बनते थे और निर्णय भी समूह लेता था। नियम करीब पुराने कबाइली-से थे (जैसे यह कि कृष्ण संघ का नेता है, इसलिए संघ की हर सुन्दरी उसी की है) पर जनतांत्रिक ढंग से तय होते थे।

2. **उद्घोषक**—ढिंढोरा पीटने वाला, डिंढोरची या उद्घोषणा करने वाला। पुराने समय में किसी राजाज्ञा को प्रचारित करने के लिए जगह-जगह उद्घोषकों को घुमाया जाता था।

3. **प्रारंभिक संगीत**—रेडियो नाटक शुरू होने से पहले का संगीत जिसे सुनकर ध्यान से सुनने वाले श्रोता नाटक की कल्पित स्थिति को मन में लाने के लिए तैयार हो जाये तथा अन्य काम में लगे हुए श्रोता का ध्यान इधर आकृष्ट किया जाय।

4. **वाग्दत्ता**—वह स्त्री जिसे वाक् या वाणी से पत्नी कहा गया हो, वास्तव में ब्याहा न गया हो।

5. **जैसे रथ से गिरने का आभास**—रेडियो नाटक के पात्र, स्टेशन के एक कमरे—स्टूडियो—में एक माइक के आस-पास खड़े बोलते रहते हैं, वास्तव में न भागते हैं न कूदते हैं, और न ही गिरते हैं। इसलिए उनके रथ से गिरने का केवल 'आभास' होगा, उन्हें वास्तव में गिरकर अपना अंग तोड़ने की ज़रूरत नहीं होती।

6. **चक्र**—सुदर्शन चक्र, जो कृष्ण की दाहिनी तर्जनी पर घूमता रहता है। इसे जिस पर चलाया जाता था, वह निश्चित मरता था।

7. तो उससे क्या, उसकी कितनी ही पत्नियाँ...—यादव नागरिक कृष्ण की कई पत्नियाँ होने का कारण उसकी सुन्दरता और वीरता बतलाते हैं। पौराणिक कथा के अनुसार कृष्ण की 16008 पत्नियाँ थीं, शायद इतनी यादव संघ की स्त्रियाँ होंगी। पर दार्शनिकों तथा भक्त-चिंतकों

ने इस कथा की अलग ढंग से व्याख्या की है। कृष्ण को भगवद्गीता में योगेश्वर भी कहा गया है और अन्यत्र बाल-ब्रह्मचारी भी।

8. **गृह कलह**—गृहयुद्ध, जब देश के भीतर शक्तियों की टक्कर होती है और विरोध पलता है। कृष्ण यादव संघ के नेता थे, अक्रूर संघपति थे और इन दो में मतभेद होने पर यादव बट जाते तथा आपस में उलझ पड़ते।

9. यादव तीन वंशों भोज, अंधक तथा वृष्णि में विभाजित थे। इनके राज्य मथुरा से गुजरात और विदर्भ तक फैले हुए थे। इस नाटक का संबंध केवल यादव संघ से है, महाभारत युद्ध के अन्य पक्षों से नहीं।

10. **अंतराल संगीत**—बीच में समय का अंतर बताने के लिए हल्के से बजने वाला कोई वाद्य बजाया जाता है। उद्घोषक की घोषणा सुनकर लोग इकट्ठे हुए थे। फिर कुछ समय बीता और लोग सभा-स्थल पर इकट्ठे होने लगे कि मणि का निर्णय सुनें।

11. भागने से पहले अक्रूर को शतधन्वा मणि दे गये थे और फिर शतधन्वा ने सत्राजित की हत्या की। अक्रूर, मणि वापिस संघ को लौटाना चाहते थे पर उस समय लोगों के भाव क्रुद्ध थे इसलिए उन्हें चोर समझा जाकर उन पर आक्रमण हो सकता था और कृष्ण, सात्यकि, आदि यादव भी इस गृहयुद्ध में एक या दूसरा पक्ष लेते। इसलिए अक्रूर ने कुछ देर के लिए तीर्थयात्रा की, जितनी देर संकट टला।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) बोध—

1. रेडियो नाटक तथा मंच नाटक की तुलना कीजिए।
2. कलंक किसे लग रहा था और क्यों? इससे मुक्ति का यत्न किसने किया और क्या उसे इस कार्य में सफलता मिली?
3. क्या आपको इस नाटक से लगता है कि प्राचीन भारत में जनतंत्र की प्रणाली थी? कैसे?

4. चरित्र-चित्रण कीजिए :

   कृष्ण, बलराम, देवकी, अक्रूर ।

(ख) विवरणात्मक अध्ययन—

   सप्रसग व्याख्या कीजिए :

1. हाँ आर्य, मैं पिता की मृत्यु का प्रतिशोध……—…पिता का सिर काटा है ।
2. तो फिर तू मेरी ओर से संदेशा भिजवा दे………बचाना होगा ।
3. कितना सरल और साथ ही कितना…………बस अक्रूर के आने की देर है ।
4. शांत ! शांत ! आप वे दिन नहीं भूले……………आपके सामने उपस्थित हैं ।

जगदीशचन्द्र माथुर

परिचय :

इनका जन्म 1917 ई० में हुआ। श्री माथुर एक ऊँचे शासन अधिकारी के रूप में रहकरभी देश के साहित्यिक क्षेत्रों में किसी अन्य साहित्यकार की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय हुए हैं। आप I.C.S. उपाधि प्राप्त हैं और कई वर्षों आकाशवाणी के महानिदेशक रह चुके है। अश्क और रामकुमार वर्मा ने जिस यथार्थ नाट्य-शैली का आरम्भ किया उसे विकसित करने का श्रेय श्री माथुर को है।

'भोर का तारा' आपका पहला एकांकी संग्रह था। आपकी इस रचना को बहुत मान्यता प्राप्त हुई। उसके बाद आपने ऐतिहासिक और सामाजिक पृष्ठभूमि को लेकर कई एकांकी लिखे हैं, जिनमें ढहते और उभरते मूल्यों के संघर्ष को चित्रित किया गया है। आपने कई अन्य नाटककारों की तुलना में बहुत कम नाटक लिखे हैं, परन्तु नाटक के रचना-शिल्प पर आपका अधिकार अपनी पीढ़ी के सभी लेखकों से बढ़कर है। इसका कारण सम्भवत: यही है कि आपको स्वयं रंगमंच का पर्याप्त अनुभव है।

आपके नाटकों से यह स्पष्ट होता है कि आप पाश्चात्य तथा भारतीय दोनों नाट्य-परम्पराओं के विद्वान् हैं। हिन्दी एकांकी को आधुनिक पश्चिमी एकाँकी के समकक्ष लाने में आपके एकांकी महत्त्वपूर्ण भाग अदा करते हैं। विशेषकर, आपके हल्के-फुल्के सुखान्त एकांकी हिन्दी में प्रहसनों की कमी पूरा करने में बड़े सहायक हुए। इनमें जीवन की हल्की-फुल्की घटनाएँ लेकर उन पर व्यंग्य भी किया गया है और उन्हें हास्य की सामग्री बनाया गया है।

आपके एकांकी-संग्रह निम्नलिखित हैं—

भोर का तारा, ओ मेरे सपने।

मकड़ी का जाला

(रंग-नाटक)

चरित्र

भोलानाथ

क्लर्क

चन्द्रभान

एक छाया मूर्ति

एक अदृश्य आवाज़

[स्टार ट्रेडिंग कम्पनी के मैनेजिंग डाइरेक्टर मि० भोलानाथ का घर का ऑफ़िस जो कभी-कभी सिटिंग रूम का भी काम दे देता है। कमरा उसी तरह सजा हुआ है जैसा एक ऊँची तनखवाह पाने वाले ऐसे अफ़सर का होता है जिसे मकान सजाने का कोई ख़ास शौक नहीं है। सामने वाली दीवार पर दाहिनी ओर खिड़की में नीला पर्दा। तरह-तरह के कैलेण्डर टँगे हुए हैं, मानो इस बात की घोषणा करते हों कि मि० भोलानाथ इतनी सारी कम्पनियों में हिस्सेदार हैं। घड़ी भी है। आगे की तरफ़ ऑफ़िस टेबल है, लेकिन सेंटर में नहीं—कुछ बाईं तरफ़। दो-चार अच्छी पॉलिशदार कुर्सियाँ रखी हैं। खिड़की के पास एक छोटी मेज पर रेडियो-सेट है।

मि० भोलानाथ ऑफ़िस चेयर पर बैठे हैं, बाएँ हाथ में सिगरेट और दाहिने में फ़ाउंटेन पेन। उम्र कोई ४५ वर्ष; माथे पर झुर्रियाँ, चेहरे से व्यावसायिकता और अनुभवशीलता टपकती है। पास में खड़े हुए क्लर्क काग़ज़ात दिखा रहे हैं और भोलानाथ दस्तख़त करते जा रहे हैं।]

भो० : कुछ और काग़ज़ात हैं क्या? **(घड़ी देखकर)** थोड़ी देर में रेडियो पर मार्केट रिपोर्ट और न्यूज आती होंगी। उन्हें सुनना है।

क्लर्क : जी काग़ज़ात तो सब ख़तम हो गए···। लेकिन बाहर वह साहेब बैठे हुए है मिलने के लिए।

भो० : कौन?

क्ल० : वही मि० चन्द्रभान जिन्हें आप कम्पनी की कानपुर वाली एजेन्सी में असिस्टेन्ट मैनेजर बनाने का विचार कर रहे हैं।

भो० : अरे वह कॉलिज का निकला हुआ नौजवान! हाँ, उसे ज़रूर बुलाओ **(घड़ी देखता हुआ)** थोड़ी देर के लिए। अच्छा

आदमी है, स्मार्ट है। कम्पनी के काम का साबित होगा। लेकिन कुछ ख्वाबी दुनिया में रहता जान पड़ता है। समझे हुए हैं कि ज़िन्दगी में शायरी भी ज़रूरी है। ह ह ह ! इसलिए बुलाया था कि उसे कुछ असलियत का ज्ञान करा दिया जाये। और मुझे लुत्फ़ भी आता है ऐसे नौजवानों को ठोस दुनिया से टकराते देखकर।

क्ल० : (इसी बीच में फ़ाइल को बन्द कर बगल में दबाता हुआ) तो भेजूँ ?

भो० : हाँ हाँ।

[क्लर्क का प्रस्थान। भोलानाथ दूसरी सिगरेट जलाते हैं। चन्द्रभान का प्रवेश। गोरे रंग का सुशील युवक। सूट पहने हुए हैं। न वह केवल कल्पना के लोक में विचरण करने वाला कवि है और न एक चलता-पुरज़ा हज़रत किस्म का नौजवान। वह एक निर्मल युवक है जिसके चेहरे से बुद्धिमत्ता टपकती है और आशा, आकांक्षा, अभिलाषा जिसकी सहज मुस्कान को बनाए हुए हैं। उसकी आँखों में उज्ज्वल भविष्य नाच रहा है। भोलानाथ किंचित मुस्कराते हुए उसकी ओर देखता है।]

भो० : आइए, आइए मि० चन्द्रभान। बैठिए। (चन्द्रभान बैठता है।) स्मोक कीजिएगा ?

च० : अभी शुरू तो नहीं किया है।

भो० : यह भी अच्छा ही है……। लेकिन मेरा तजुर्बा है कि अलावा सोसाइटी में, कन्सेन्ट्रेशन की ख़ातिर भी सिगरेट पीना कभी-कभी ज़रूरी हो जाता है।

च० : जी हाँ, मैंने बहुत से बड़े आदमियों को किसी-न-किसी तरह का स्मोक करते देखा है।

भो० : आप भी बड़े आदमी बनने का अरमान रखते हैं ?

च० : अरमान किसके नहीं होते ? लेकिन, हाँ अगर आपकी मेहरबानी रही तो शायद कुछ उन्नति कर सकूँ ।

भो० : तो उन्नति के लिए जो साधन जरूरी हैं, उन पर आप अमल करेंगे ?

च० : जी हाँ ! ज़रूर कोशिश करूँगा ।

भो० : मुझे आपसे बहुत उम्मीद है। आपके कैरियर और सर्टीफिकेट्स को देखते हुए ही मैंने आपको रखा है । मैं नये आदमियों को मौका देना चाहता हूँ। उनमें जोश होता है काम के लिए । कानपुर एजेन्सी की असिस्टेण्ट मैनेजरी ज़िम्मेदारी का काम है । एक मुनासिब आदमी के लिए । 'राइज़' करने के अच्छे मौके हैं । आप जल्दी ही मैनेजर तक बन सकते हैं ।

च० : मैं आपका बहुत आभारी हूं । मुझे उम्मीद है कि मुझे आप से हमेशा सीख मिलती रहेगी ।

भो० : सीख ! आपको मैं ज़रूर सीख देता रहूंगा । इसीलिए तो आपको बुलाया है कि इब्तिदा आज ही कर दी जाय । (**बनी हुई आवाज़ में**) आपके जैसे नौजवानों को राह दिखाने में मुझे बहुत सन्तोष मिलता है···। लेकिन एक शर्त है ।

च० : शर्त ?

भो० : जी हाँ, शर्त ! और वह यह कि अगर आप रंगीन चश्मे पहनने के आदी हों तो उन्हें उठाकर रख दीजिए । खुली धूप में नंगी आँखों से चीज़ों को देखने की आदत डालिए ।

च० : रंगीन चश्मे ?

भो० : आप समझे नहीं । आपने तो अपनी दरख्वास्त में लिखा था कि कविता करने में आपको कुछ इनामात मिल चुके हैं ।

च० : कविता तो क्या, हाँ कभी-कभी उमंग आने पर तुकबंदियाँ कर लेता हूं ।

भो० : तो सुनिए। उन उमंगों का अब आपको साथ छोड़ना पड़ेगा।

च० : लेकिन उनका मेरे काम पर तो कोई बुरा असर नहीं पड़ सकता। अगर मैं हवा से हिलती पत्तियों की पुकार सुनता रहूं या चाँद से अठखेलियाँ करने वाले बादलों से मोहित होता रहूं तो इसमें कोई बुराई तो नहीं।

भो० : मि० चन्द्रभान, अगर मेरी जगह कोई और मैनेजिंग डाइरेक्टर होता तो इस बात को सुनकर आपको जगह तो क्या, बैठने भी न देता।

च० : **(सकपका कर)** आई एम सॉरी, सर।

भो० : **(वही बनी हुई मुस्कराहट)** लेकिन मैं आपसे नाखुश नहीं हूं। मैं चाहता हूं कि आप जैसे युवकों को ठीक राह दिखला सकूं। एक ज़माना था कि मैं भी आप ही की तरह सपनों की दुनिया में बसेरा लेता था। लेकिन अब मैं जानता हूं कि यह सब फिज़ूल है। ये थोथी बातें हैं। अगर तुम पत्तियों की पुकार सुनते रहे या बादल के टुकड़ों और गीत के स्वरों पर मोहित होते रहे तो बुरी तरह ठोकर खाओगे, बुरी तरह! तुम नौकरी करने आये हो कोई खिलवाड़ करने के लिए नहीं। कविता, प्यार, गीत······छिः ; जानते हो तुम ज़िन्दगी के द्वार पर खड़े हो।

च० : (कुछ दबता हुआ) जानता हूं।

भो० : और भला बताओ तो, तुम ज़िन्दगी को क्या समझते हो ?

च० : (हिचकता हुआ) क्या समझता हूं···? ···मैं समझता हूँ···

भो० : कि वह एक सुन्दरी देवी है जिसका प्रेम पाने के लिए तुम पूजा करते हो। यही न ?

च० : ···(चुप)

भो० : ह ह ह ! तुम भूलते हो। जिन्दगी तो एक कठोर मालिक की तरह है जिसके दिल में दया नहीं है, जो सिर्फ काम लेना जानता है, मिन्नतें जिस पर असर नहीं कर सकती, गाने और रोने पर जो मोहित नहीं होता। मि० चन्द्रभान तुम्हें ताज्जुब हो रहा है ?

च० : मुझे···मुझे डर लग रहा है।

भो० : डर···हा हा हा। डरो, हाँ, खूब डरो। डर कर ही जीवन की गति को समझा जा सकता है। डरते हुए, संभलते हुए क़दम बढ़ाओ। उमंगों के लिए यहाँ जगह नहीं है। समझो कि जीवन एक मशीन की तरह है। तुम्हारा काम नियत है, तत्परता के साथ बिना विचलित हुए सीधी सड़क पर बढ़े जाओ। रास्ते के फूलों पर न मचलो, हवा चाहे मस्त हो, तुम बेखबर न बनो, चिड़ियाँ चाहे कितना चहकें, तुम उन पर कान न दो। मेरे दोस्त, समझदार बनो। The world belongs to the prudent.

च० : और दिल ?

भो० : दिल तुम से अलग हस्ती नहीं रखता। तुम उसे अपनी मशीन का हिस्सा बना सकते हो। बनाना पड़ेगा। भावुकता को दबाना पड़ेगा। तुम्हें राइज़ करना है। जो जितना ही अपने जज़्बात को दबा सकता है उतनी ही तरक्की कर सकता है। समझो, जज़्बात को दबाओ।

च० : मि० भोलानाथ, मुझे सोचने का वक़्त दीजिए।

भो० : मि० चन्द्रभान, आप कितना ही सोचें, इस नतीजे से आप बच नहीं सकते।

च० : (कुछ घबराकर)···मैं···अभी तो इजाज़त चाहूँगा।

भो० : (मानो कोई उन्माद चढ़ा हो) आप बच नहीं सकते। जाला तन गया है। इसके महीन रेशों से छुटकारा पाना नामुमकिन

है। आप तड़पिएगा, हाथ-पैर पटकिएगा, लेकिन बाहर नहीं निकल सकेंगे। (**चन्द्रभान के चेहरे पर आँखें गड़ाकर**) नामुमकिन है।

च० : (**घबराकर खड़ा होता है**) माफ़ कीजिए। मेरी तबियत परेशान हो रही है। ...मैं जाना चाहूँगा (**जल्दी से प्रस्थान**)।

भो० : (**गहरी साँस लेकर**) और मैं हूँ उस जाले की मकड़ी। (**इस्पाती हँसी**) खूब तड़पेगा। खूब जोर लगाएगा। लेकिन आखिर मुझसे बच कर कहाँ जाएगा? रात का कीड़ा धूप में आ भटका है। झुलस जायगा, झुलस। (**रेडियो-सेट ऑन कर देता है। मार्केट रिपोर्ट सुनाई जा रही है। भोलानाथ एक कुर्सी पर बैठकर दूसरी को पैर फैलाने के लिए घसीट लेता है और आराम से टांग पसार कर आधा लेटा, आधा बैठा रेडियो सुनता है। थोड़ी देर में एकाध जमुहाई लेता है। रेडियो की आवाज़** : "...हापुड़ गेहूं, तैयार ३ रुपये १० आने, भावों का ३ रुपये १०॥ आने, लायलपुर गेहूँ तैयार ३ रुपये ८॥ आने।

कपास की रेट बाज़ार खुलने पर २८१ से २८१॥ थी। बन्द होते वक्त भड़ौच कपास की रेट २७६॥ रह गई।

अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का बाज़ार भाव पर काफी असर पड़ा। यह दिल्ली है। अभी तक आप हिन्दुस्तानी में बाज़ार भाव सुन रहे थे। अब थोड़ी ही देर में आपको हिन्दुस्तानी में खबरें सुनाई जायेंगी।"

[हलके बाजों की आवाज़। भोलानाथ इस बीच में दो-चार बार जमुहाई ले चुका है। आंखों में खुमारी है।]

"अब आप हिन्दुस्तानी में खबरें सुनिए। ये खबरें दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, लाहौर, लखनऊ, पेशावर से एक साथ सुनाई जा

रही हैं। आज के बुलेटिन की खास-खास खबरें ये हैं। पूर्वी मोर्चे पर रूस की फ़ौजों का एक जबरदस्त धावा। अंग्रेज़ी समुद्री बेड़े द्वारा नार्वे पर हमले की कोशिश। लीबिया के मैदान में लड़ाई ज़ोरों पर। अमेरिका के विदेशी मामलात के वज़ीर का अहम बयान। ……पूर्वी मोर्चे पर लड़ाई की जो जो खबरें आज तक आई हैं उनसे साफ़ ज़ाहिर है कि दुश्मन को काफ़ी नुक़सान—

[धीरे-धीरे कमरे के वातावरण में काफी परिवर्तन होता जान पड़ता है। रेडियो के शब्द धीमे हो जाते हैं मानों कहीं दूर से आवाज़ आ रही हो। थोड़ी देर में वे शब्द बिल्कुल सुनाई नहीं पड़ते और उनकी जगह एक हल्की अद्‌भुत संगीत-ध्वनि कर्णगोचर होती है। जितने समय में यह परिवर्तन होते हैं उस बीच में भोलानाथ बिल्कुल सो जाता है। एकाध खुर्राटे भी लेता है।

एक हल्का-नीला प्रकाश कमरे को आवृत्त कर लेता है। उस कुहासे में कमरे के सारे पदार्थ अस्पष्ट और अपरिचित से जान पड़ते हैं। ज्यों-ज्यों वह नीला प्रकाश गहरा होता जाता है त्यों-त्यों रेडियो की संगीत ध्वनि में से एक और ही आवाज़ सुनाई पड़ने लगती है। यह आवाज़ पहली आवाज़ से बिल्कुल भिन्न है, मानो किसी और लोक से आ रही हो। पहले उसके शब्द अस्पष्ट और अर्थहीन जान पड़ते हैं, लेकिन नीले प्रकाश के बढ़ने के साथ ही वे शब्द भी स्पष्ट होते जाते हैं।

भोलानाथ उन शब्दों को सुनकर चौंकता नहीं है। वह पहले तो आंखें बन्द किए ही और बाद में आंखें अधखुली किए उत्तर दिए जाता है, बिना हिले। उसके व्यवहार से कोई असाधारणता नहीं प्रकट होती। वह भी मानो उस अचेतन दृश्य का एक भाग बन गया है।

बात यह है कि यह सारा परिवर्तित दृश्य उस कमरे को चेतना के लोक से उठाकर अर्धचेतना के लोक में पहुँचा देता है जिसमें कोई बात विचित्र नहीं जान पड़ती।

और कोई शब्द न मिलने के कारण हम रेडियो से निकली हुई इस नई आवाज़ को 'अर्धचेतन' कहेंगे।]

अर्ध चेतन : खुश······जीत······और······। तुम······समझते हो भोलानाथ कि तुमने एक और विजय पाई, एक और नादान युवक के सपनों को भंग किया, सुन्दरता के मन्दिर के एक और उपासक को भ्रष्ट कर दिया।

भो० : (बन्द आंखें, कुछ नाक की-सी आवाज़) तुम मुझ से कह रहे हो ?

अ० चे० : हां मैं तुम से कह रहा हूँ। तुम ताज्जुब तो नहीं कर रहे हो ?

भो० : मैं ताज्जुब किसी बात पर नहीं करता। तुम जो कुछ कहना चाहते हो कहो, मैं सुनूँगा।

अ० चे० : क्या सच ही तुम मेरी बात सुनोगे ? ······तुम झूठ बोल रहे हो। दिन में न जाने कितनी बार मैं अनगिनती बातें करना चाहता हूं; लेकिन तुम कान तक नहीं देते। उस दिन जब तुम्हारे बाग़ में कामिनी के पेड़ अपने फूल गिरा-गिरा कर मख़मली घास पर सफेद चादर बिछा रहे थे, तब मैंने तुम से कुछ कहना चाहा था; लेकिन तुमने न सुना। एक और रोज़ पच्छिम दिशा को घेरती हुई सांझ के अंचल में पड़ी हुई चौखट के आइने को देखकर मैंने अपनी बात छेड़ी, लेकिन तुमने मुझे झिड़क दिया। उस दिन पहाड़ी की कंदराओं में से निकलती हुई बंसी का स्वर मैंने तुम्हें सुनाना चाहा; लेकिन तुम दामन सा छुड़ाकर भागे।

भो० : लेकिन तुम सोचो तो। मैं कामकाजी आदमी, मुझे यह सब सुनने की इच्छा कहाँ !

अ० चे० : तुम फिर झूठ बोल रहे हो। तुम्हारे पास इच्छा है, तीव्र लालसा है; लेकिन तुम उसे दबाते हो। तुम उठते हुए तूफान को रोकने की चेष्टा करते हो, सागर की चढ़ने वाली लहरों के

आगे बाँध लगाते हो। और फिर तुम्हें घमण्ड होता है यह सोचकर कि तुमने इन्हें थाम लिया।

भो० : तुम यह सब मुझे क्यों सुना रहे हो ?

अ० चे० : इसलिए कि आज तुम्हें सुनना पड़ रहा है। आज तुम मेरे दास हो। आज वह रुका हुआ तूफान दुगुनी तेज़ी से चलेगा। वे लहरें तुम्हें अपनी भुजाओं में समेटकर ही दम लेंगी। तुम सोचते हो कि तुम्हारी जीत हुई कोमल कल्पना की उस मूर्ति पर। लेकिन सचमुच तो आज तुम्हारी भारी हार है क्योंकि आज तुम्हारी भावुकता जाग रही है।

भो० : यह कैसे कहते हो तुम ? देखा नहीं किस सफ़ाई से कितने थोड़े समय में मैंने इस लड़के चन्द्रभान को झूठ और सपनों की दुनिया से वास्तविकता की दुनिया में ला दिया।

अ० चे० : हा, हा, हा ! खूब !···अच्छा एक बात पूछता हूँ, ईमानदारी से बताना, ईमानदारी से। तुम्हें इस युवक के सपने टूक-टूक करने से आनन्द मिला; क्यों मिला ?

भो० : क्यों मिला ?···क्यों···क्योंकि मैंने उसकी आँखें खोल दीं।

अ० चे० : वाह रे परोपकारी !···भोलानाथ तुम फिर झूठ बोल रहे हो। सोचो, सोचो, क्या यह आनन्द तुम्हें इसलिए नहीं आता कि यह तुम्हारी भूखी आत्मा की माँग पूरी करता है, उस आत्मा की, जिसे तुमने इतने दिनों सच्चे आनन्द के लिए तरसाया है ? सोचो।

भो० : यह कौन ऐसी बातें मुझे सुना रहा है ? मैं नहीं सुनना चाहता, नहीं।

अ० चे० : सुना रहा हूँ, मैं। मैं वही हूं जो एक दिन तुम थे। मैं तुम ही हूं, और इसलिए मेरी बातें तुम्हें सुननी पड़ेंगी। भोलानाथ, तुम बच नहीं सकते। मकड़ी का जाला तन रहा है और तुम उसमें बेबसी से टंग रहे हो। कीड़े।

भो० : ओह यह झूठ है, यह गलत है।...मैं स्टार ट्रेडिंग कम्पनी का मैनेजिंग डाइरेक्टर, बीसियों कम्पनियों का हिस्सेदार, स्टील कार्पोरेशन का मेम्बर, मैं भोलानाथ। मैं वह हूं जिसने उन्नति और सफलता का आदर्श समाज को दिखाया है। गरीबी के खन्दक से मैं अमीरी के महल की चोटी तक पहुँच चुका हूं। मैं सफल हूँ, कर्मठ हूं, भित्ति की तरह अचल हूं, नियमों पर चला हूं। मैं असलियत को पहचानता हूं।

अ० चे० : कह चुके भोलानाथ? काले बादल पर चूना पोत चुके? तो लो सुनो। तुम पापी हो, समझे, पापी।

भो० : पापी?

अ० चे० : हाँ, क्योंकि यह सब पाने के लिए तुमने अपनी सबसे बड़ी निधि को नष्ट किया। तुमने अपने दिल से प्यार को निर्वासित कर दिया, संगीत को फेंक निकाला, सौन्दर्य दृष्टि को अन्धा कर दिया। और तुम समझे कि इस तरह तुम भावों के बहाव को हमेशा के लिए दबा सकोगे।

भो० : रुको, थोड़ा रुको।

अ० चे० : हा हा हा।...लेकिन तुमने यह न जाना कि बहाव रुकने पर झील बन जाता है जो किसी-न-किसी दिन बाँध को तोड़-फोड़ कर फिर बह निकलती है। रूप बदला है, वस्तु नहीं। पानी की प्यास अब शराब की प्यास बन गई है, लेकिन प्यास मरी नहीं। जो खुशी तुम्हें उस बेचारे युवक को तड़पाने में मिली है, वह उसी का बिगड़ा हुआ, सड़ा हुआ रूप है जो एक दिन तुम्हें फूलों से, तितलियों से, आसमान में हंसों की तरह तैरते हुए बादलों से, युवती की मुस्कान से, प्यार के चुम्बन से, मिलती थी।

भो० : उफ, बन्द करो, बन्द करो। क्या तुम मुझे रुलाकर ही छोड़ोगे?

अ० चे० : काश, तुम रो सकते! काश तुम्हारे सूखे हुए दिल पर भावों के बादल छहराकर बरस पड़ते। उस सावन की बरसात में वे मोर नाचते हैं जिन्हें अब तक तुमने पिंजड़े में बन्द कर रखा है। वह पपीहा बोलता जिसकी बोली तुमने बेकार कर रखी है।···भोलानाथ, भोलानाथ सुनो, क्या तुम इस स्वर, इस गीत को पहचानते हो ?

[कहीं से, उस नीले अर्ध प्रकाश के किसी कोने में से एक स्त्री का गुनगुनाने का और फिर स्पष्ट स्वर सुनाई पड़ता है।]

अ० चे० : पहचानते हो ?

[वह स्वर एक मधुर गीत में परिणत हो जाता है]

गीत

रे मन की कहानी आँखों से सुनाओ।
खुशबू की ज़बानी फूलों को बताओ।
जो गन्ध न बिखरी तो
फूलों ने हँसा ही क्यों ?
बरसाए न जो चान्दी
वह चाँद उगा ही क्यों ?
है आज खुली वाणी मत रोक लगाओ।
रे मन की कहानी आँखों से सुनाओ।

[यद्यपि गीत के शब्द बन्द हो जाते हैं, तथापि स्वर जारी रहता है। भोलानाथ सुनता है, बेबस होकर। वह कुछ कहना चाहता है लेकिन ज़बान चलती नहीं, उस स्वर के बैंक ग्राउण्ड में 'अर्ध चेतन' फिर बोलना शुरू कर देता है। लेकिन अब उस स्वर में प्रतारणा नहीं है, तरस है, करुणा है।]

अ० चे० : याद करो, भोलानाथ याद करो। बीस बरस पहले की बात जब तुम्हारे भी दिल था, तुम भी रो-हँस सकते थे। तभी तो

यह गाना सुना था, सड़क के किनारे शाम को घूमने जाते वक्त उस छोटे से बंगले से यह स्वर सुन पड़ा था ? तुम रुके और बाजा बन्द हो गया। आँखें मिलीं और न जाने कितने युगों के सन्देशे कह गईं। और फिर वही घण्टों की बातचीत, वही मिलन का आह्लाद, वियोग का विषाद, वही नासमझी की चिट्ठियाँ, वही चोरी का नटखटपन !···**(मालूम होता है जैसे भोलानाथ की आँखों से आँसू बह रहे हों)** रोते हो, भोलानाथ ? हाँ रोओ, जवानी की उन उमंगों के लिए जिन्हें तुमने अब उन्नति के मार्ग में बैलों की तरह जोत रखा है।···उन्नति, हाँ उसी उन्नति की प्रबल इच्छा ही···तो तुम्हारे दिल में उस वक्त उठी थी; क्योंकि तुम गरीब थे और तुम में योग्यता थी। तुमने सोचा पहले अमीर बन लूं और फिर प्रेम भी करूँगा, सुन्दरता को पहचान लूंगा।···और तुमने उस वैभव को तिलांजलि दे दी। प्यार के सोते सूख गए, फूलों की रंगत उड़ गई। ज़िन्दगी एक रेगिस्तानी सड़क बन गई जिस पर अन्धे होकर तुम आगे बढ़ते ही रहे,···और उस रेगिस्तान में **(हल्के स्वर में)** कमला के आँसू बरसों तक टप-टप टपकते रहे, बेकार, बरबस !

भो० : **(काँपते स्वर में)** क्या नाम बताया तुमने ? **(बैक-ग्राउण्ड म्यूजिक तीव्र)**

अ० चे० : कमला। क-म-ला। याद आया ? वे अरुण अधर, वह नागिन सी वेणी, वे पहेली बूझने वाली आँखें, वह कपोतिनी सी गरदन, वे ··**(ज्यों-ज्यों वे शब्द बोले जाते, त्यों-त्यों बैक ग्राउण्ड म्यूज़िक तीव्र होती जाती है, और कमरे के बाएँ कोने में अंधकार में से एक अपर लोक की मूर्ति उसी हल्के नीले प्रकाश से मंडित दृष्टिगोचर होती है—पहले अस्पष्ट फिर क्रमशः कुछ स्पष्ट होती हुई। उसकी नीली साड़ी उस वातावरण से ही उत्पन्न हुई जान पड़ती है। वह अर्धोन्मीलित प्रकाश उस नारी मूर्ति के**

सौन्दर्य को द्विगुणित कर रहा है। धीरे-धीरे वह कमरे के एक कोने से दूसरे की ओर सरक रही है। उसके नेत्र भोलानाथ पर गड़े हुए हैं। गीत का स्वर तीव्र हो रहा है—"रे मन की कहानी आँखों से सुनाओ।") देख पाते हो भोलानाथ ? वही मुस्कान, वही—

[भोलानाथ देखता है। बोलना चाहता है, बोल नहीं पाता। उठना चाहता है, उठ नहीं पाता। उधर वह मूर्ति पुनः अन्धकार की ओर बढ़ रही है। उस मुस्कान में गहरा विषाद है, उन आँखों में अपलक निमंत्रण। गीत का स्वर ऊँचा उठकर फिर धीरे-धीरे नीचे गिरने लगता है। सहसा मालूम होता है मानो भोलानाथ भीषण प्रयास कर रहा हो। आखिर मुँह से आवाज़ निकल ही पड़ती है और वह चिल्लाकर उठ खड़ा होता है।]

भो० : कमला, कमला ! ठहरो मैं भी चलता हूँ, ठहरो, ठहरो—

[लेकिन स्वप्न टूट जाता है। कमरे का नीला प्रकाश और वह मूर्ति जादू के तमाशे की तरह एक पल में गायब हो जाते हैं। अब तो कमरे भर में वही साधारण पीली रोशनी है। उसी क्षण में वह गाने का स्वर और वह विचित्र आवाज़ भी न जाने कहाँ विलीन हो जाती हैं। उनके स्थान पर रेडियो में से वही ख़बरों का प्रोग्राम जारी है।]

रेडियो— "... और इसके बाद हमारे फ़ौजी दस्तों ने दुश्मन के ३५ जबरदस्त टैंकों को बरबाद कर डाला। दुश्मन के जिन बम मार हवाई जहाज़ों ने कल हमला किया था, उनमें से चार को हमारे शिकारी हवाई जहाज़ों ने और छः को ज़मीन वाली तोपों ने बरबाद कर डाला। ख्याल किया जाता है कि दुश्मन को अब तक—

[और भोलानाथ हक्का-बक्का खड़ा है। उसकी आँखें चौंधिया जाती हैं। माथे पर पसीना चमक रहा है। वह हाथों से आँखों को

भींचता है। एक बार, दूसरी बार। फिर सिर को पकड़कर किंकर्त्तव्य-विमूढ़ खड़ा रहता है। रेडियो की तरफ अचरज भरी दृष्टि से देखता है। फिर उसके पास जाकर करीब से देखता है। झुँझलाकर उसे बन्द कर देता है।

[क्लर्क का प्रवेश। फ़ाइल हाथ में है]

भो० : बाबू, यहाँ कोई आया था, थोड़ी देर हुई।

क्लर्क : जी, मैं ही हाज़िर हुआ था, लेकिन आपको सोता हुआ देखकर लौट गया।

भो० : तुम आए थे, तुम ?

क्लर्क : जी हाँ, बात यह थी कि वह बाबू साहेब मि० चन्द्रभान फिर आए हैं और कहते हैं कि वह नौकरी करने के लिए तैयार हैं।

भो० : **(आवेश में)** उसे कह दो कि अगर उसे बचना है तो वह दूर भाग जाये—दूर बहुत दूर !

क्लर्क : **(विस्मित)** जी !

भो० : **(कुछ देर चारों ओर निगाह डालता है। फिर कुर्सी पर बैठता है। लाचारी की दृष्टि क्लर्क पर डालता है। मेज़ पर दोनों हाथों पर सिर रखकर सोचता है। उसका भावावेश गायब हो चुका है, आखिर मन्द, रुग्ण स्वर में बोलता है।)** मि० चन्द्र-भान से कह दो कि कल दस बजे कम्पनी के दफ्तर में मिलें। काम की तफ़सील समझा दी जायगी। **(कुछ रुककर)** और···, जाओ।

[क्लर्क अविश्वास से मालिक की तरफ देखता हुआ दबे पाँव बाहर जाता है]

भो० : **(हाथों पर सिर रखकर सिसकता है)** मकड़ी···का···जाला।

[पर्दा गिरता है]

●

मकड़ी का जाला : नाटक-परिचय

जगदीशचन्द्र माथुर का नाटक 'मकड़ी का जाला' जीवन के उस कड़ुए यथार्थ का चित्रण करता हैं, जिससे मुक्ति पाने की छटपटाहट में हम सपने देखने लगते हैं। सपने हमारे भविष्य के हो सकते हैं, अतीत की मधुरता के होते हैं। हम जीवन को सुन्दरतर बनाने की कोशिश करते रहते हैं इसलिए कि वर्तमान का भद्दापन भूल सकें। इसी कोशिश में कविता, संगीत, प्यार आदि की रचना होती है। यह ज़रूरी भी है, वरना हमारी ज़िन्दगी एक जाले में फँस के रह जाये।

भोलानाथ एक बड़ी कम्पनी के सर्वेसर्वा; धन, फ़ुर्सत, वैभव, अधिकार की दृष्टि से भाग्यवान। पर अपनी ज़िन्दगी के उन बीते दिनों को भुला कर मिटाना चाहते हैं, जब कमला से प्यार करते थे, उसके गीतों पर मुग्ध हो जाया करते थे। अब तो उस सबको निराधार कल्पना समझ कर ठोस दुनिया में भौतिक तरक्की को सब कुछ समझ बैठे हैं। उनकी तुलना में एक युवक है जो उनकी कम्पनी में नौकरी पाने की गर्ज़ से आया है। भोलानाथ इस युवक को जवानी की कल्पनाशील दुनिया से निकाल कर ठोस दुनिया में उतारना चाहते हैं। जवान इससे समझौता नहीं करता और भाग आता है। इस बीच भोलानाथ का अपना अर्द्ध चेतन, अपना अन्तःकरण, अपने आप बहस करके समझाता है कि भौतिक तरक्की ही सब कुछ नहीं। अपने सुन्दर तथा मधुर अतीत को भूल कर वह बेकार कोशिश कर रहा है। मधुर सपनों की अनुपस्थिति में जीवन सूना रह जायगा। उधर युवक अपने विचार बदल चुका है। नौकरी को वह ज़्यादा मूल्यवान समझ कर भोलानाथ की 'सीख' मान चुका है पर भोलानाथ खुद बदल चुका है और युवक के 'सपनों' का मूल्य समझ चुका है।

यह नाटक जीवन की ठोस भौतिकता और मधुर कल्पनाशीलता में पाए जाने वाले विरोधों की व्याख्या करता है। बड़े होकर हम जीवन के कटु यथार्थ से समझौता करके मधुर अतीत को भूल जाते हैं पर जीवन जीने के लिए वह भी ज़रूरी है। वास्तव में भोलानाथ और युवक एक ही जीवन के

दो पक्ष हैं। जीवन, यों, बहुत कुरूप है, धन के बावजूद नीरस है, सुख के बावजूद बेचैन है—एक मकड़ी का जाला है जिसमें सबको फँस के ही रहना होता है, इसलिए इसे थोड़ा मधुर बनाना ज़रूरी होता है।

नाटक में भोलानाथ के अतीत का तथा मधुरता के प्रति उनके आकृष्ट होने का संकेत करने के लिए रेडियो की ध्वनि का सहारा लिया गया है। रेडियो पर युद्ध (संभवतः दूसरा महायुद्ध १९३९-४५ जब भारत विभाजित नहीं हुआ था) की भीषण और कटु खबरें आ रही हैं जिनके बीच में से भोलानाथ के अर्द्धचेतन की आवाज़ उभरती है। अर्द्धचेतन भोलानाथ का ही मन है, इसलिए कहा जा सकता है कि भोलानाथ कुर्सी पर ऊँघते हुए सपना देख रहा है, और अपने उस रवैये का विश्लेषण कर रहा है जो उसने युवक के साथ बरता।

सहायक-सामग्री

१. ऊँची तनख्वाह पाने वाले अफ़सर—नाटक १९४७ के पहले का वातावरण पेश करता है इसलिए, आज मंच पर प्रस्तुत करने के लिए इस दृश्यबंध (सेट) को और सुधारना होगा तथा और वैभवशाली तथा सुन्दर बनाना होगा।

२. कंसेण्ट्रेशन—ध्यान भटक न जाय, इसलिए।

३. रंगीन चश्मे—दुनिया को सुन्दर तथा मधुर समझने की दृष्टि।

४. The world belongs to the prudent—दुनिया उनकी है जो दूरदर्शी हों, केवल वर्तमान के सपनों में न खो जायँ, भविष्य की कड़ु-आहट को भी ध्यान में रखें।

५. जाला तन गया है—आप जो जीवन धारण किए हुए हैं तो कुरूप दुनिया के दु.खों ने आपको फांसने के लिए जाल फैलाया है, इससे आप बच नहीं सकते।

६. हिंदुस्तानी—हिन्दी-उर्दू मिली-जुली भाषा, जो रोमन लिपि में लिखी जाती थी। आजादी से पहले भारत में एक राजनीतिक नारे के अनुरूप इस भाषा को गढ़ने के प्रयास हुए जो थोड़ी दूर चल कर समाप्त हुए।

७. अर्द्ध चेतन—हमारे मस्तिष्क का वह भाग जो दिन को सुप्त रहता है और चारों ओर के प्राप्त प्रभाव, बीते समय की स्मृतियाँ आदि संजो के रखता है तथा रात को या हमारी आँख जब भी लगे, जाग पड़ता है। इसी से हम सपने देखते हैं या नींद में बोलते हैं।

८. कामकाजी आदमी—भोलानाथ अपनी व्यस्तता का बहाना करके अपनी इच्छाओं को दबाता है। वे उसके अर्द्धचेतन में चली जाती हैं और मौका मिलने पर बोल रही हैं।

९. उससे कह दो कि अगर उसे बचना है—अर्द्धचेतन की बहस से भोलानाथ समझ चुका है कि यथार्थ कितना कड़ुआ है और माधुर्य को इससे बचना चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) बोध :

१. नाटक आज से कई वर्ष पुराना है। आज मंच पर खेलने के लिए आप उसके दृश्यबंध (सेट) में क्या परिवर्तन लाना चाहेंगे ?

२. भोलानाथ और चन्द्रभान की दृष्टि में क्या अन्तर है ?

३. अर्धचेतन की बहस से भोलानाथ के अतीत का कौन पहलू उजागर होता है ?

४. अन्त में युवक अपना दृष्टिकोण बदल चुका है और नौकरी करने को तैयार है—आपकी राय में ऐसा क्यों कर हुआ हो सकता है ?

(ख) **विवरणात्मक अध्ययन**

सप्रसंग व्याख्या कीजिए :

१. लेकिन मैं आपसे खुश नहीं हूँ······ज़िन्दगी के द्वार पर खड़े हो।

२. और मैं हूँ उस जाले की मकड़ी······झुलस जायगा झुलस।

३. हा हा हा !······लेकिन तुमने यह······चुम्बन से मिलती थी।

४. काश, तुम रो सकते ?······इस गीत को पहचानते हो।

एस० पी० खत्री

परिचय

प्रयाग विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग के प्राध्यापक डा० एस० पी० खत्री, एम० ए० डी० फिल, का असामायिक देहावसान ७ जनवरी १९५८ को हुआ। ये हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार और विख्यात आलोचक थे। उनके परलोक गमन से हिन्दी के आलोचना-क्षेत्र का एक महारथी चला गया। हिन्दी साहित्य को उन्होंने अनेक पुस्तकें दी हैं। इनमें दो महत्वपूर्ण ग्रंथ—'हास्य की रूप-रेखा' और 'इतिहास तथा सिद्धांत' हैं इसके अतिरिक्त अंग्रेजी साहित्य का इतिहास भी इन्होंने लिखा है।

आप एक सफल एकांकीकार भी थे। प्रस्तुत एकांकी 'दादा की मौत' एकांकी कला की दृष्टि से एक उत्कृष्ट एकांकी है। हिन्दी के अतिरिक्त अन्य कई भाषाओं के विद्वान होने के कारण आपका गम्भीर अध्ययन रहा है। इनके नाटकों में नाट्य-शिल्प के प्रायः सभी अंग विद्यमान होते हैं। प्रस्तुत एकांकी में चरित्रोचित भाषा इसकी एक विशेषता है।

यह उनके एकांकी-संकलन 'सात एकांकी' से लिया गया है। इस संकलन के एकांकी हमारे समाज की विभिन्न समस्याओं को लेकर लिखे गये हैं। 'दादा की मौत' में व्यंग्य और हास्य का मिश्रण किया गया है।

दादा की मौत

(रंग-नाटक)

चरित्र

बुड्ढा दादा	जिम मुकर्जी
बड़ी बेटी	मिसेज़ बैनर्जी
बड़ा दामाद	मिस्टर बैनर्जी
उनकी लड़की	जेनी बैनर्जी
छोटी बेटी	मिसेज़ घोष
छोटा दामाद	मिस्टर घोष

[एक छोटा मगर सफ़ा-सुथरा बैठने का कमरा; दो दीवारों में खिड़किया; एक तरफ आग जलाने के लिए स्थान; वहीं अंगीठी पर चाय की केतली, उसी के पास एक बड़ी अलमारी और पास लगी हुई दूसरी छोटी अलमारी जिस पर "स्टेट्समैन" और "इंगलिशमैन" और हिन्दी "नया हिन्द" और "विशाल भारत" आदि मासिक पत्रों की पुरानी फ़ाइलें रखी हैं। बीचों-बीच एक खाने की मेज़; उसके चारों ओर कुर्सियाँ; एक के पास बिल्कुल फटी हुई चप्पल और पास में बड़ा सोफ़ा। मेज़ पर कपड़ा बिछा है और चाय का बर्तन सजा है। उसी पर एक कोने में दो एक पत्रिकाएँ पड़ी हैं। छोटी अलमारी पर खाने का सामान रखा है। सोफे के पास एक नया मखमली स्लीपर है। दीवार पर एक बहुत पुरानी मगर कीमती घड़ी टंगी है। बाहर बरामदे में कुछ कुर्सियाँ और हैट टांगने की खूँटियाँ। परदा उठते ही बड़ी बेटी मिसेज़ बैनर्जी मेज पर चाय का सामान ठीक करते दिखाई देती है। बड़ी बेटी खूब मोटी, नाटी देहाती औरतों के समान ज़ोर-ज़ोर से और जल्दी-जल्दी बात करने वाली है। वह काले कपड़े पहिने है, मगर मातम मनाने का पूरा लिबास नहीं है। वह कुछ देर कान लगाकर दाहिनी खिड़की से बरामदे में झांकती है—बरामदे के सामने ही बागीचा है, फिर सड़क।]

मिसेज़ बैनर्जी : जेनी ! ओ जेनी ! सुनती है कि नहीं। जल्दी अन्दर आ। जल्दी।

[जेनी, १० बरस की तेज़, सुन्दर लड़की, रंग-बिरंगे कपड़े पहिने खट-खट बरामदे से होकर अन्दर आती है।]

जेनी, तेरे कुछ अकल-वकल है या नहीं ? इतनी बड़ी हो गई और कुछ भी शऊर नहीं आया। क्यों सुबह से बागीचे में खेल रही है ? कुछ ख्याल भी है कि अभी मिस्टर और मिसेज़ घोष

आते होंगे। कहाँ तो तेरे दादा सदा के लिए चल दिये, मातम का सारा इन्तज़ाम पड़ा है, और तू गुलछर्रे उड़ा रही है। चल, जल्दी से कपड़े बदल ले। ऊपर न जाना। जल्दी कर, वे लोग आते ही होंगे। चल जल्दी, तू तो हम लोगों की नाक कटा कर ही मानेगी।

जेनी : क्यों माँ ! वे लोग क्यों आ रहे हैं; उन्होंने तो बरसों से इधर नहीं झांका। आज क्या करने आ रहे हैं।

मिसेज बैनर्जी : आ रहे हैं तेरे दादा की जायदाद सँभालने। पहले उनकी कौन ज़रूरत थी, अब आ रहे हैं हिस्सा बटाने। तेरे पिता ने उन्हें खबर जो दी है, नहीं तो सब कहते कि हम लोगों ने ही सब हड़प लिया। ज्यों ही दादा की सांस छूटी उधर खबर गई। दादा की सांस छूटे तो छूटे, उनकी गाड़ी नही छूटेगी। जा तू जल्दी कर। [जेनी दूसरे कमरे में जाती है और अन्दर से बाहर झाँकती रहती है।]

[बाहर चलने की आहट]

हैं ! हैं ! भगवान ! क्या वे सब आ गये ? बड़ी जल्दी !

[वह खिड़की से बाहर झाँकती है; उसका पिता आता दिखाई देता है; लम्बी सांस फेंक कर वह अन्दर आती है और खिड़की बन्द कर लेती है।]

भगवान ने ही लाज रखी ! वे लोग नहीं, तेरे 'पापा' हैं जेनी, जल्दी कर।

[उसका पति मिस्टर बेनर्जी काफ़ी मोटा-ताजा तगड़ा आदमी है; उसकी बड़ी-बड़ी मूंछें नीचे झुकी हैं। वह मातमी कपड़े—काला कोट काली टाई पहने है। हैट लगाये, एक हाथ में कागज़ बंधा पारसल लिए हैं। अन्दर आते ही चारों तरफ़ देखकर—]

मि० बैनर्जी : अभी तक सब आए नहीं, शायद।

मिसेज बै० : दीख नहीं पड़ता क्या ? मैंने उन्हें अपने पेट में तो छिपा नहीं लिया, होते तो यहीं होते या और कहीं ! **(जेनी से)** अरे अभी

तक तू तैयार नहीं हुई। सफ़ेद फ्रॉक पहनकर काला फीता बांध क्यों नहीं लेती—कै दफे समझाऊँ जेनी (**कमरे के अन्दर जाती है।**) (पति से) हम लोगों के कपड़े ज्यादा ठीक तो नहीं; मगर इतने थोड़े वक्त में हो ही क्या सकता था। मरने वाले कभी हम लोगों की परेशानी सोचते हैं? जब चाहा चल बसे। अगर कुछ पता हो तो कुछ इन्तज़ाम कर रखें। भड़-भड़ में कुछ हो भी तो नहीं पाता। मगर फिर भी उन लोगों को क्या सूझी होगी। यहाँ आते ही मुँह की खायेंगी, इतने ही इन्तज़ाम से मात हो जायेंगी। मत सोच करो, जी।

[मिस्टर बैनर्जी चुप-चाप एक कुर्सी खींच कर बैठ जाते हैं।]

जूते तो अपने उतार दो; देखो जरा भी धूल न गिरे। वे सब बड़े मीन-मेख निकालने वाले हैं; खासकर मेरी बहिन तो धूल गिरगिट जैसी देख लेती हैं। आँखें बिज्जू ऐसी हैं। मुझी से ठीक रहती है।

मि० बैनर्जी : वे लोग अब क्या आयेंगे, बड़ी देर हो गई। मुझे तो मालूम होता कि उन्होंने इरादा छोड़ दिया होगा। पहले की लड़ाई क्या उनको भूली होगी? जब तुम में और तुम्हारी बहिन में हाथापाई, झोंटा झुटव्वल हुआ था? वही तो मुँह के बल गिरी थी। क्या आयेगी। उसने कहा भी तो था कि मैं तेरे दरवाज़े झांकने भी न आऊँगी।

मिसेज बैनर्जी : अरे तुम चले हो आदमी पहचानने। बड़ी अकल ही है न! अरे वह तो ऐसे दौड़ती हुई आएगी। ऐसे, जैसे पालतू कुत्ता! मेरी बहिन है न, कोई और नहीं। और फिर जायदाद का लालच। वह तो कूदती आवेगी। मरने पर भी दादा को चैन न लेने देगी। दादा को तो वह भूत बन कर लगेगी।

[वह कागज़ का पारसल खोलती है, उसमें से एक पाव रोटी निकाल कर उसके टुकड़े काटने लगती है।]

मि० बैनर्जी : यह आदत खानदानी मालूम होती है।

मिसेज़ बैनर्जी : तुम्हारा मतलब ? तुमको भी शायद हवा लगी है। मरे-जिए का भी कोई लिहाज़ नहीं। यह भी कोई गाली गलौज का वक्त है ?

मि० बैनर्जी : मैं तुम्हें कुछ थोड़े ही कह रहा हूँ। मैं तो तुम्हारे दादा की बात सोच रहा था। मेरी चप्पलें कहाँ रख दी तुमने ?

मिसेज़ बैनर्जी : दिखाई नहीं देता है क्या ? ज़रा उठके तो देखो, क्या कुर्सी के पास पड़ी है, जैसे चाहते हो कि उनके पर लग जाएँ। उठना मत ! बैठे ही बैठे उन्हें न्योता देना जैसे मेरी बहिन को न्योता दिया है। मगर वह तो चिथड़े-चिथड़े हो गई है, तुमको कुछ अपना ख्याल भी रहता है ? महीनों से चप्पलें टूट गईं मगर नई लाने की न तो फुरसत हुई और न पैसे ही हुए। दिन भर काम करते-करते मैं मरी जाती हूँ और तुम्हारा सिंगार नहीं बन पाता। दादा की ही नई वाली चप्पलें पहन लो। दादा की नई चीज़ों को इधर-उधर धूल खाते देखकर मुझे बड़ा दुःख होता है, वे बेचारे भी इसे पहनने की लालसा लिए चल बसे। चलो, उन्हें ही डाल लो। वे अब क्या उन्हें पहनने के लिए आवेंगे ?

मि० बैनर्जी : वे तो मेरे पैरों में बहुत छोटी बैठेंगी।

मिसेज बैनर्जी : क्या पहनते-पहनते जूते फिट नहीं होते; चप्पलें भी ठीक हो जायेंगी। तुम तो समझते हो कि चप्पलें नहीं फ़ौलादी शिकंजे हैं, जो बड़ी तकलीफ होगी और तुम नहीं पहनोगे तो ये मर्दानी चप्पलें क्या मैं गले लटकाऊँगी। दादा की चीज़ों को तो तुम्हीं को बरतना है। मुझको नहीं।

[वह एक पाव रोटी काट चुकती है और मक्खन का बर्तन पास लाकर खोलती है। दूसरी रोटी और केक अलग लपेट कर रख देती है।]

मि० बैनर्जी : (पाव रोटी का टुकड़ा मुंह में डालते-डालते) प्रिये ! मैं दादा की बड़ी मेज़ की बात सोच रहा था, बड़ी खूबसूरत है। उनके पास तो बेकार ही रखी रहती थी—कभी-कभी वह उस पर बैठ कर प्रेम-पत्र ही लिखते थे, मगर उसके लिए कुछ मेज़ तो ज़रूरी नहीं। मेरी राय में तो तुम उस पर निगाह रखना। मिस्टर घोष को समझा लेना वे उसको ले भी कैसे जायेंगे। ऐसा करना कि वह हम लोगों के ही हिस्से में पड़े। तुम ज़रा होशियारी से समझौता करना।

मिसेज बैनर्जी : तुम्हारी चिकनी-चुपड़ी से वह मेज़ तुम्हें मिल चुकी। मेरी बहिन बड़ी सूपनखा है, बड़ी चलती-पुर्जी। उससे पार पाना बड़ा कठिन है। ज्यों ही हम लोगों की निगाह पहचानेगी उसकी आँखें चौकन्नी हो जायेंगी। बड़ी ही कंजूस है, बड़ी मक्खी चूस। ऐसा भी भगवान ने उसे क्या बनाया। दादा को जीते जी ही चूस लेना चाहती थी, मरने पर क्या चैन लेने देगी ? आग पड़े ऐसी कंजूसी पर। निकम्मी ! जोंक है जोंक।

मि० बैनर्जी : मुझे तो डर लग रहा है कि कहीं वह उसी पर न जम कर बैठ जाय फिर तो हिलाए भी न हिलेगी। ठीक ही कहती हो, जोंक तो है ही। न जाने मिस्टर घोष से कैसे निबाहती होगी।

मिसेज़ बैनर्जी : तो तुम समझे थे कि वह मेरे जैसी सीधी-साधी है। क्या मैं हूँ जो पैरों की जूतियाँ सरकाया करती हूँ।

मि० बैनर्जी : मगर अब कुछ तो करना ही पड़ेगा, नहीं तो चीज हाथ से निकल जायगी।

मिसेज़ बैनर्जी : तो यह क्यों नहीं कहते कि मैं ही सबकी बुरी बनूँ और तुम मीठे। बैठे-बैठे फ़ाख़ता ही उड़ाना सीखा है या और कुछ। तुम्हारे कभी तो अक़ल आती। भगवान जाने जब अक़ल बंट रही थी तब तुम शायद सिंघाड़े बो रहे थे। कुछ तरकीब खुद न सोचना। दादा के जीते-जी मैं सँभालूँ और उनके मरने पर

भी बोझा मेरे ही सर। मेज़ पर लार टपक रही है और अक़्ल अरहर के खेत में चर रही है। दादा के प्रेम-पत्र अब ख़तम हुए तो तुम्हारे वाले उस मेज़ पर लिखे जाएँगे। क्यों ?

मि० बैनर्जी : प्रिये ! तुम्हारी बहिन से मामला पड़ा है, मेरे बूते उसे संभालना नहीं। तुम्हीं उससे निपट सकती हो। (दूसरी पाव रोटी का टुकड़ा लेता है।)

मिसेज़ बैनर्जी : तो देखो ऐसा क्यों न करें ? मेरे ख्याल में जब बहिन पिछली दफ़े यहाँ आई थी, दादा की मेज़ उस वक्त ऊपर नहीं थी। उसको ऊपर से उतार ही न लें। बस ठीक ! अब पौ बारह यही सबसे अच्छा होगा। उसको ख्वाब में भी ख्याल न आवेगा कि वह रखी कहाँ थी। बस अब देर नहीं ?

मि० बैनर्जी : वाह प्रिये, वाह ! खूब सोचा ! मैं तो……

मिसेज़ बैनर्जी : बस अब लेक्चर न झाड़ो। उनके आते-आते चलो उसे टिका लावें। यहाँ आने पर कैसा शक, किसका इजारा ?

मि० बैनर्जी : कहीं कोई देख न ले ?

मिसेज़ बैनर्जी : देख ले ! ज़रूर ! जिन्दगी भर ऐसे ही रहोगे कि कभी कुछ अर्थ के भी साबित होगे। आएगा कौन ? यह मेरा घर है या चौराहा ? तुम्हें यह तो सूझा न होगा कि दरवाज़ा बन्द भी हो सकता है। और नहीं तो पुरानी अलमारी लाओ उसकी जगह ऊपर चढ़ा दें और टेबुल खिसका लाएँ। बहिन आवे तो उसे ले जाय, मेरी बला से; कूड़ा-कबाड़ उसके भाग में रहे, चलो अच्छा है। मैं हमेशा मनाती थी कि उस अलमारी से पिंड छूटे, चलो दादा की मौत ने वह दिन तो दिखाया।

मि० बैनर्जी : अगर हम लोगों के हटाते-हटाते वे लोग आ पड़े तो ?

मिसेज़ बैनर्जी : तो, चूड़ियाँ पहिन कर बैठो। दरवाज़ा बन्द किए देती हूँ, कोई वे लोग चींटी तो है नहीं जो दराज में से घुस आवेंगे। अपना कोट खोलो और भले आदमियों-से ऊपर चढ़ चलो; मैं सब

ठीक कर लूँगी। दादा तो गए ही, तुम्हारी नब्ज़ क्यों छूटी जा रही है? चलो, उठो भी?

[वह उठता है, कोट खोलता है, तब तक मिसेज़ बैनर्जी दरवाज़ा बन्द करके लौट आती है, इतने में जेनी कहे मुताबिक फ्रॉक पहने और काला फीता हाथ में लिए उछलती कूदती आ जाती है।]

जेनी : माँ, ज़रा मेरा फीता तो बाँध दो।

मिसेज़ बैनर्जी : जा अपने पापा से बन्धवा ले मैं काम में लगी हूँ।

[मिस्टर बैनर्जी को कोट खोलते देखकर]

जेनी बैनर्जी : पापा! कोट क्यों उतार रहे हैं, मैं तो कपड़े पहनकर आ रही हूँ और आप नंगे हो रहे हैं।

मि० बैनर्जी : बेटी, हम लोग ऊपर दादा की मेज उतारने जा रहे हैं! अभी आते हैं।

जेनी : (कुछ देर सोचकर) तो क्या हम लोग मौसी से बचा कर उसे हड़प कर लेंगे। और उन्होंने देखा तो?

मि० बैनर्जी : नहीं नहीं, बेटी! वह तो दादा मरने के पहले ही तेरी माँ को दे गए थे।

जेनी : क्या आज सुबह?

मि० बैनर्जी : हाँ बेटी, आज ही सुबह।

जेनी : मगर पापा! आज सुबह तो दादा नशे में धुत्त थे। क्या इसी से?

मि० बैनर्जी : खबरदार बेटी, अगर ऐसी बात ज़बान पर लाई। अब दादा के बारे में ऐसा कभी मत कहना। उनकी आत्मा को कष्ट होगा?

[मिस्टर बैनर्जी उसका फीता बाँध देते हैं; इतने में मिसेज़ बैनर्जी ऊपर से एक टाँगने वाली घड़ी लिए उतरती है।]

मिसेज बैं० : मैंने सोचा इस घड़ी को नीचे लेती जाऊँ। ऊपर अब किसको वक्त बताएगी। हम लोगों की घड़ी तो बिल्कुल मनमानी

चलती थी, हमेशा कोई न कोई रोग ही लगा रहता था। अब इससे काम ठीक चलेगा। दादा की कोई साध पूरी न हो पाई ! अभी पिछले ही हफ़्ते तो वे इसे खरीद लाए थे और इसी हफ़्ते हम लोगों को छोड़ चले। उठो, अब मेज़ की फ़िकर तो करो।

जेनी : माँ ! यह तो दादा वाली घड़ी है न ? क्यों, कैसा बताया ?

मिसेज बैं० : चुप, पगली ! तुझे कुछ मालूम भी है ? यह हम लोगों की है। देख, खबरदार अगर एक भी बात मुँह से निकाली। खबरदार ! अपनी मौसी से जो तूने कुछ कहा तो !

जेनी : **(अपने मन में)** मैं तो समझती थी कि शायद हम लोग उसे चुरा रहे हों ? **(इतने में दरवाजा भड़भड़ाने की आवाज होती है।)**

मिसेज बैं० : **(ऊपर से)** देख जेनी। अगर मौसी और मौसा हों तो चुपके रहना, दरवाज़ा मैं खोलूंगी।

[जेनी खिड़की से बाहर झाँकती है]

जेनी : वही हैं। दरवाज़ा खोल दूं ?

मिसेज बैं० : खबरदार कम्बख्त ! मैं आती ही हूँ।

[दरवाज़ा फिर खटखटाया जाता है]

मिसेज बैं० : खटखटाने दो।

[एक टक्कर लगने की आवाज़ होती है]

दीवार बचाकर चलो, तुम भी बस तालमखाना हो; एक ही तरफ देखते हो।

[मिसेज़ और मिस्टर बैनर्जी, पसीने से तर मेज़ टिकाए हुए उतरते हैं, और आलमारी के पास टिकाकर चीज़ें ठीक-ठाक करते हैं कि इतने में फिर दरवाज़ा खटकता है]

मिसेज बैं० : जेनी ! दरवाज़ा खोलती क्यों नहीं, आवाज़ नहीं सुन पड़ती क्या ?

[वह भागती है]

(मिस्टर बैनर्जी से)—अपना कोट पहिन लो जी, जल्दी करो।

मिस्टर बैं० : क्या दीवार का पलस्तर काफ़ी टूट गया ?

मिसेज बैं० : छोड़ो भी पलस्तर वलस्तर। देखो मेरे कपड़े तो ठीक हैं न ?

[शीशे में देखकर अपने बाल ठीक करती है]

जरा देखना मेरी बहिन की शक्ल कैसी हो जाती है ? हम लोगों को मातम के लिबास में देखकर नंगी मालूम होगी। देखना गौर से। **(मिस्टर बैनर्जी के पास एक अखबार फेंक देती है)** लो पढ़ते जाओ। ऐसा जताना कि हम लोग उन लोगों का इन्तज़ार ही कर रहे थे।

[मिस्टर बैनर्जी मेज़ के एक ओर और मिसेज़ दूसरी ओर बैठ जाते हैं। दोनों अखबार पढ़ने का दिखावा करते हैं। जेनी, मौसी और मौसा को अन्दर लाती है। मौसी—एक ठिगनी, ज़िद्दी और चकमक आँखों वाली स्त्री जान पड़ती है। वह मातम का पूरा लिबास पहिने है, यहाँ तक कि हैट पर भी काला पर टँका है। मिस्टर घोष भी नाटे कद के हँस-हँस के बात करने वाले आदमी हैं। उनका भी दस्ताना तक काले रंग का है। वे मातम पुरसी के लायक अपनी शक्ल बनाने में लगे हैं, कभी आँखें सिकोड़ते हैं और कभी होंठ। मिसेज़ घोष बड़ी शान से अन्दर आती हैं; मिसेज़ बैनर्जी के पास जाते ही दोनों एक दूसरे का चुम्बन लेती हैं। दोनों आदमी हाथ मिलाते हैं। मिसेज बैनर्जी दबी-दबी निगाहों से मेहमानों का लिबास देखती हैं।]

मिसेज घोष : (धीरे से) दादा, आखिरकार चल ही दिए ?

मिसेज बैं० : हाँ ! उनकी यही इच्छा। उनकी उम्र बहत्तर ही तो थी। अभी पिछले ही हफ़्ते उनकी सालगिरह मनाई थी। (आँसू पोंछ लेती है)

[मिस्टर घोष एक तरफ और दूसरी तरफ अपनी बहिन के पास मिसेज़ घोष बैठ जाती हैं।]

मिस्टर घोष : देखो बहिन, तुम्हें अपने को संभालना चाहिए। हम सब लोगों को भी एक न एक दिन जाना ही है।

मिसेज बै० : ईश्वर जाने भाग्य में क्या लिखा है? दादा का मरना कोई जान सकता था। बेचारे···

मिस्टर बै० : छोटी दीदी! तुम लोगों ने बड़ी देर लगाई, हम लोग सुबह से ही इन्तज़ार में थे।

मिसेज घोष : मैं क्या करती, जल्दी निकलना हो ही नहीं सका; बहुत कोशिश की, मगर सब कोशिश बेकार!

मिसेज बै० : कैसी कोशिश? क्या कुछ खास काम लग गया था?

मिसेज घोष : बहिन! तुमने भी भली चलाई, खास काम क्या, बिना मातमी कपड़ों का इन्तज़ाम किए किस मुँह से चल देती?

[वह मिसेज बैनर्जी को ऊपर से नीचे तक देखती है]

मिसेज बै० : हम लोगों ने भी अभी ही नाप दे दिए हैं, आज बनके आते ही होंगे। मुझे तो बाज़ारू सिले-सिलाए कपड़े खरीदने में बड़ा वैसा लगता है।

मिसेज घोष : मुझे तो बड़ा आराम मिलता है। ऐसे मौके मिलते ही कहाँ हैं? मगर यह तो बताओ दादा को हो क्या गया? डॉक्टर को तो दिखाया ही होगा?

मिसेज बै० : डॉक्टर के इन्तज़ार में तो हम लोग बैठे ही थे जब तुम आईं। उन्हें सुबह ही बुलाया मगर अब तक नहीं आए।

मिसेज घोष : सुबह से बुला रखा और अब तक नहीं आए। बड़ा ताज्जुब है! किसी दूसरे को बुलाना चाहिए था। बड़ी ग़लती हुई तुमसे।

मिसेज बै० : बुलाती कैसे? डॉक्टर धींगरा ने उन्हें हमेशा देखा है, उन्हें ही बुलाया था। भला यह भी कोई तरीका है कि जीते जी एक डॉक्टर देखे और मरते ही उसे दूध की मक्खी जैसा निकाल फेंके। दादा भी अगर जीते होते तो क्या कहते? पढ़-लिखकर

कोई ऐसी भी बेवकूफ़ी करता है। धींगरा ही बताएँगे कि क्या हुआ। हम लोगों को उन पर पूरा बिश्वास है।

मिसेज घोष : तुम जानो तुम्हारा काम जाने ! मगर ग़लती भारी है।

मिस्टर घोष : (बात संभालते हुए) नहीं, कोई ग़लती भारी हल्की नहीं होती। शायद डॉक्टर धींगरा को खबर ठीक से नहीं पहुँची होगी। फिर से आदमी भेज देखो ?

मिस्टर बैं० : गया तो मैं खुद दो दफ़े; मगर कहीं ऑपरेशन करने गये थे। शायद अब आ ही रहे होंगे।

मिसेज बैं० : क्यों नहीं आएँगे। (**मिसेज घोष की ओर इशारा करके**) मगर इनकी उलझन का क्या इलाज ! ग़लती ग़लती चिल्ला रही हैं। अब आके भी क्या कर लेंगे। कोई संजीवनी बूटी तो पिला नहीं देंगे। यह तो भगवान ही के बस की बात है, आदमी की नहीं। दादा के भाग में यही था।

मिसेज घोष : मगर डॉक्टर से धीरज तो बंध जाता है कि आदमी मरा या जिया। कभी-कभी तो डॉक्टर के हाथ रखते ही आदमी उठ बैठे है। संजोग की बात है। अभी उसी दिन हमारे मुहल्ले में एक आदमी को मरने जैसी बेहोशी आई, और सब तैयारी हो गई। मगर जाने कोई पूरब का देहाती आया और लाल मिर्चा जलाकर उसने कुछ हू हू किया, हिलाया-डुलाया कि वह उठ बैठा।

मिसेज बैं० : मगर यह मैंने जब सुना था जब आदमी कहीं डूबडाब जाए तब, ऐसे नहीं !

मिस्टर घोष : दादा के बारे में इसका खतरा तो हो ही नहीं सकता था। पानी से तो वह ऐसे ही भागते थे जैसे जंगली चीता। (**कुछ मुस्कराते हैं**)

मिसेज घोष : हैं ! कैसी बातें कर रहे हो !

[मिस्टर घोष चुपचाप सिर झुकाकर मातम का मुँह बनाने की कोशिश करते हैं]

मिसेज बै० : दादा चाहे पानी से डरते हों मगर नहाते रोज़ थे; आजकल के पढ़े-लिखों सा काक-स्नान नहीं करते थे। सारा बदन भिगोते थे।

मिसेज घोष : बदन भिगोने से क्या--उनका दिमाग तो सुबह से ही भीगना शुरू करता था और रात तक तो बस दीन दुनिया एक हो जाती थी। मगर इन बातों से क्या फ़ायदा। अब दादा की बातें कहानी ही रहेंगी (**रोनी शक्ल बनाने का यत्न करती है**)।

मिसेज बै० : न जाने उन्हें यकायक क्या हो गया। सुबह तक बैठे हुए गिलास खनकाते रहे, फिर बीमे का रुपया जमा करने गए, मगर आते ही भगवान ने उन्हे याद कर लिया।

मिस्टर घो० : बीमे का रुपया जमा करना तो कमाल है। बड़ा ख्याल रखते थे बेचारे। शायद ही उनसे कोई ऐसी भूल हुई हो ; यहाँ तो जब तक कोई याद न दिलावे तो पॉलिसी ही ठप पड़ जाए। भला दादा बिना रुपया चुकाये थोड़े ही विदा हो जाते। ऐसी चीज़ें वे हमेशा अपनी शान के खिलाफ़ समझा करते थे। और एक हम लोग हैं।

मिसेज बै० : सुबह ही सुबह वे शायद 'साउथ होटल' गये होंगे क्योंकि जब वहाँ से लौटे तो काफ़ी मस्त मालूम पड़ते थे। मैंने कहा भी कि दादा नाश्ता तैयार है, देर बिल्कुल नहीं मगर उनके आखिरी शब्द थे (**गला भरकर**) आखिरी शब्द थे—"मुझे नींद आ रही है, मैं अब नाश्ता नहीं करूँगा।" हम लोगों को क्या मालूम था कि उनकी यह आखिरी नींद होगी (**सिसकती है**)।

मिस्टर घो० : च-च-च-च !!

मिस्टर बै० : और जब मैं ऊपर उन्हें देखने गया तो वे सोने वाले कपड़े पहन कर लेटे हुए थे।

मिसेज घो० : मालूम पड़ता है उनको कुछ न कुछ गैब से मालूम हो गया था; तभी तो, कहीं कोई ऐसी तैयारी करता है।

मिस्टर बै० : मुझे कुछ ऐसा ही जान पड़ता है क्योंकि जब मैंने पूछा कि आपकी तबीयत तो ठीक है—वे बहुत धीरे-धीरे बोले "बेटे ! मेरा जूता उतार दो, अब हाथ काम नहीं दे रहे हैं। ईश्वर तुम लोगों को खुश रखें।"

मिस्टर घो० : ओह ! च-च-च-च-!!!!

मिसेज बै० : तब भी मेरा जी न माना। कुछ नाश्ता ट्रे में ले गई। उसे ले जाकर मैंने दादा की नई मेज, **(कुछ सोचकर)** नहीं, नहीं, आलमारी पर शायद रख दिया। मगर क्या बताऊँ—हे भगवान—ज्यों ही मैंने उनके सिर पर हाथ रखा तो बर्फ। बदन देखा—बर्फ। पैर देखा—बर्फ। फिर सिर देखा—फिर बर्फ। मैं वहीं हाय करके बैठ गई। मुझे क्या मालूम था कि दादा यों ही बात करते-करते……। **(सिसकती है)**

मिस्टर घो० : ओह ! ओह ! ओह ! च-च-च-च !!!!

मिस्टर बै० : इतने ही में मुझे मिसेज़ बैनर्जी की पुकार सुनाई दी। मैं भागा। मगर क्या ! तोते उड़ चुके थे। कुछ भी तो न कर पाये। ऐसी जल्दी की दादा ने कि बस……**(हाथ ऊपर उठाकर ईश्वर की ओर इशारा करता है)** मगर उनके आगे किसकी चली है…।

मिसेज घो० : क्या बिल्कुल जान न थी ?

मिस्टर बै० : बिल्कुल क्या रत्ती भर नहीं ! न हिले न डुले जैसे के तैसे ही पड़े रहे। ऐसी शान्ति उनके चेहरे पर थी; ऐसी शान्ति; ऐसी शान्ति कि क्या बतलाऊँ ?

मिसेज घो० : मैं हमेशा यही सोचती थी कि दादा बहुत दिन चलेंगे नहीं। वही हुआ भी, मेरा सोचा हुआ कभी भी खाली नहीं जाता।

मिस्टर घो० : च-च-च-च-च ! यही मुझे भी रह-रह के ख्याल आता था। मगर दादा की रीति हमेशा निराली ही रही। (**मातमी चेहरा बनाने की कोशिश करते हैं**)

[मिसेज़ बैनर्जी जैसे इन बातों से ऊबकर उठ बैठती है]

मिसेज बै० : अब यह तय करना चाहिए कि पहले हम लोग ऊपर चलें या चाय-वाय खतम कर लें।

मिसेज घो० : (**मिस्टर घोष की ओर देखकर**) क्यों ! तुम्हारी क्या राय है ?

मिस्टर घो० : दोनों बातों में मेरी कोई खास राय नहीं, जिसमें आप लोगों की (**सबकी तरफ इशारा करता है**) खुशी।

मिसेज घो० : (**केतली की ओर देखकर**) अगर पानी उबल ही रहा है तो पहले चाय ही सही। दादा बेचारे ! क्या बताएँ ! आदमी का क्या ठिकाना !!

[मिसेज़ बैनर्जी चाय की केतली उठाकर चाय बनाती है और सबके सामने प्याले रखती है]

मिस्टर बै० : हम लोगों को दुनिया की रीत तो निबाहनी ही है। अब यह सोचना है कि अखबारों में क्या खबर भेजी जाये।

मिसेज घो० : यही तो मैं भी बहुत देर से सोच रही थी। क्यों बहिन ! तुम्हीं कुछ सोचकर बताओ।

मिसेज बै० : अगर मैं लिखती तो ऐसे शुरू करती 'अपनी प्रिय पुत्री के निवास स्थान—२८१, म्योर रोड, इलाहाबाद में······इत्यादि, इत्यादि। आगे तो आसान है।

मिस्टर घो० : मेरी राय में तो अगर कोई चुभती हुई कविता होती तो शायद ज़्यादा फबता ! क्यों मिस्टर बैनर्जी ?

मिस्टर बै० : यह तो बड़ा आसान है। "इंगलिश मैन" में रोज़ ही कोई न कोई प्रेमी मरता है, उस पर एक न एक स्मृति की 'कविता' निकलती रहती है, इसी में से छांट ली जाय। नई लिखने का वक्त नहीं। दादा ऐसे बेवक्त चले कि क्या किया जाय !

मिसेज घो० : मुझे तो 'स्मृति हमेशा जीती रहे' कुछ ऐसा ही पसन्द है। कितनी सुथरी चीज़ होगी यह ! और आज कल पढ़े-लिखे लोगों में ऐसा ही चलता भी है। ज्यादा लेक्चरबाज़ी तो गंवारपन हो जायगा। और फिर दादा के मरने और, और लोगों के मरने में फ़रक भी तो है; बेचारे यकायक……

मिस्टर घो० : यकायक चल बसे तो क्या इसके यह माने हुए कि उन्हें दो तीन शब्दों में ही टाल दिया जाय ?

मिसेज बै० : मेरी राय में तो यह भी होना चाहिए—जैसे "आदर्श पिता, आदर्श मित्र"।

मिस्टर घो० : मगर दादा के लिए यह बातें तो मेरी समझ में कहीं मखौल न जान पड़े। भाई, आप सब लोग सोच लें, मेरा क्या !

मिस्टर बै० : तो लोगों की खातिर हम दादा की खातिर छोड़ दें ?

मिसेज घो० : नहीं, नहीं, मरने पर भी दादा की हम लोग हेठी नहीं होने देंगे। कोई छोटी-मोटी ही कविता क्यों न हो, ढूंढ़ निकालें।

मिस्टर बै० : हाँ, हाँ, यह तो मैं पहले ही से कहता हूँ—**(पुराने 'नया हिन्द' की फाइल उठा लाता है और एक छांट कर पढ़ता है)**—लो मिल गई, मुझे तो ज़ोरदार मालूम पड़ती है।

मिसेज बै० : सुनाओ भी कि खुद ही मज़ा ले रहे हो ?

मिस्टर बै० : हाँ क्यों नहीं—लो सुनो; **(गाकर)**
"ज़मीं तुमको भुलादे या भुलादे आस्माँ तुमको।
मगर रह रह के याद आओ हमेशा हर जगह हमको॥"

मिस्टर घो० : यह तो कुछ आजकल की सस्ते किस्म की हिन्दुस्तानी मालूम पड़ती है।

मिस्टर बै० : तो यह देखिए—**(विशाल भारत की प्रति लेकर)** गाकर—
"छिन्न-भिन्न हो हृत्तन्त्री, हो जीर्ण शीर्ण वीणा के तार।
चन्द्रलोक की झिलमिल में हम, तुम्हें तृषित देखें हर बार॥"

मिस्टर घो० : ज़रा फिर से तो पढ़िये, मुझे तो इसको पत्थर पर खुदवाना टेढ़ी खीर जान पड़ती है !

मिस्टर बैं० : तो अंगरेज़ी ही क्यों न चलने दें, सबकी समझ में भी आयगा और आजकल के स्टैण्डर्ड के हिसाब से ठीक भी उतरेगा।

("इंगलिश मैन" से पढ़ता है)—

"O ! Dad, you have left us today,
But know that it shall never be,
That you may be forgotten soon
And us content without thee."

मिस्टर घो० : आखिरी लाइन में कुछ गड़बड़ मालूम पड़ता है—कहीं 'अस कंटेंट' भी होता है, और पूरा तुक भी नहीं बैठता है। यह कविता तो कुछ अरिथमेटिक की 'लंगड़ी भिन्न' सी मालूम होती है।

मिस्टर बैं० : मगर कवियों को आजकल यह माफ़ है; ऐसा रिवाज़ भी है, और यह तो अखबार से पढ़ रहा हूँ, कुछ मैंने तो गढ़ नहीं लिया; भला छपी चीज़ें यों ही ग़लत साबित नहीं हो सकती।

मिसेज घो० : अगर यों ही बहस होती रही तो डाक का भी वक्त हो जायगा और खबर ऐसे ही पड़ी रह जायगी। मेरी राय में कुछ ऐसा लिखा हो, जिसमें दादा की खास-खास बातें—उनका हम लोगों पर प्रेम, हमारा उन पर प्रेम और ईश्वर की मर्ज़ी सबका ज़िक्र आ जाय।

मिस्टर घो० : तो आप शायद महाकाव्य चाहती हैं। मगर यह लहीम शहीम कविता छापेगा कौन ? और अगर छापने पर कोई राजी भी हो जाय तो लिखेगा कौन ? यह तो आजकल का चलताऊ कवि कर सकता है, मगर उनके नखरे कौन बर्दाश्त करेगा; कहेंगे सौ रुपये लाओ। भला दादा के मरने के बाद इतनी फ़िज़ूलखर्ची ठीक नहीं !

मिसेज घो० : अच्छा तो उसमें बहस किस बात की ? चाय पीकर तय हो ही जायगा, तब तक हम लोग मिलकर दादा की सब चीज़ों की पूरी लिस्ट बना लें; उनके कमरे में तमाम लकड़ी का सामान था।

मिसेज बै० : कोई हीरा जवाहिरात तो उनके पास था नहीं ; यों ही इधर-उधर की चीज़ें थीं। वे सब सामने ही हैं।

मिसेज घो० : हाँ, ऐसी कीमती चीज हो हो क्या सकती थी; एक सोने वाली घड़ी थी, उसको तो उन्होंने रम्मी बेटे को वादा कर दिया था।

मिसेज बै० : तुम्हारे रम्मी को ? मुझे तो खबर नहीं।

मिसेज घो० : नहीं, नहीं बहिन, कई साल पहले वे जब हम लोगों के साथ रहने आए थे तभी उन्होंने रम्मी को वादा कर दिया था। रम्मी उन्हें बहुत अच्छा लगता था ! वे उसको मानते भी क्या कम थे ?

मिसेज बै० : यह तो तुमने खूब सुनाया ! मैंने तो सपने में भी नहीं सुना था।

मिस्टर बै० : खैर, दादा के बीमे का रुपया भी तो है। क्यों ? **(मिसेज की तरफ इशारा करके)** उसकी रसीद है न, वह शायद दूसरी ही किश्त थी।

मिसेज बै० : रसीद ! **(घबराकर)** रसीद मेरे पास ! मैंने तो नहीं देखी ?

[जेनी बाहर से कूदती-कूदती आती है और थोड़ी बातें पहले से ही सुनती रहती है]

जेनी बै० : माँ, तुम लोग रसीद की ढुंढ़ाई कर रही हो न ? मगर दादा तो आज बीमे का रुपया देने ही नहीं गए।

मिसेज बै० : मगर वे बाहर तो गए थे।

जेनी : बाहर ज़रूर गए थे, मगर अभी-अभी मुझे मिस्टर सेल्डन मिले थे, उन्होंने दादा को 'साऊथ होटल' में देखा और कहीं नहीं ?

मिसेज घो० : 'साऊथ होटल' ! यह कहाँ है ?

मिसेज बै० : कुछ दिनों से वहाँ ही मंडराया करते थे; उधर ही टहल दिए हों क्या ठिकाना; बीमे की किश्त फिर क्या खाक जमा की होगी।

मिस्टर घोष : क्या अदा करने की तारीख बीत गई थी ? ठीक मालूम है ?

मिसेज बै० : मुझे तो ख्याल पड़ता है बीमा ठप ही होने वाला था, तारीख तो महीनों से गुज़र चुकी थी।

मिसेज घोष : मुझे भी कुछ अन्दर से ऐसा ही लग रहा है, यही ठीक मालूम होता है, शायद नहीं ही दिया—

मिस्टर घोष : अरे कहाँ होटल का नशा और कहाँ बीमे की याद ! बीमे की याद हिरन हो गई होगी—गिलासों के सामने। वाह रे दादा ! चलते-चलते हम सबको ठेंगा दिखला ही गये।

मिसेज घोष : मुझे तो जैसे लगता है, उन्होंने जान-बूझकर यह हरकत की है; जान-बूझकर, सिर्फ हम लोगों को चपर गट्टू बनाने के लिए और कुछ नहीं।

मिसेज बै० : भला सोचो तो ! हमारा कुछ तो ख्याल किया होता। तीन साल से हम लोगों की छाती पर मूंग दल रहे थे, सब चीज़ों की नवाबी फरमाइश रहती थी। बुड्ढे भी आजकल खूब ठगी करते हैं। अरे यह तो गिरहकटी है, गिरहकटी ! नहीं भला ऐसा भी कोई अपनों से ही करता है।

मिसेज घोष : अरे मेरे साथ तो वह पाँच साल रहे, पूरे पाँच साल। जब दिवाला खिसका दिया तभी कूच किया; फिर तुम्हारे सिर धर रहे।

मिसेज बै० : तुम तो उन्हें सालों पहले ही से हमारे सिर पर मढ़ देना चाहती थी, मगर कुछ संयोग ही कहो ?

मिस्टर बै० : मगर पहले यह पक्का तो हो कि उन्होंने बीमे की किश्त अदा की या नहीं ?

मिसेज घोष : मुझे तो पूरा यकीन हो गया है; मेरी बात कभी कच्ची नहीं उतरती।

मिसेज बैं० : बेटी जेनी, जल्दी दादा के कमरे से उनका चाभियों का गुच्छा तो ले आ। राज़ मेज ही खोलकर देखें शायद उन्होंने उसी में न कहीं रसीद डाल दी हो ?

जेनी : (उठकर) क्या दादा के कमरे में ?

मिसेज बैं० : हाँ, हाँ दादा के कमरे में ! डरती क्या है ? वहाँ कोई भूत है जो तुझे उठाकर खा लेगा !

[वह धीरे-धीरे जाती है]

मिस्टर घोष : कौन सी मेज !

मिसेज बैं० : (मेज की तरफ कोने में इशारा कर) उसमें !

मिसेज घोष : (उठकर सब उसे देखते हैं) यह तो पहले शायद नहीं थी; अभी-अभी खरीदी होगी, नई मालूम होती है ! है बड़ी खूबसूरत ! क्यों (मिस्टर घोष की ओर देखती है) क्या नीलाम से तो नहीं ली ?

मिसेज बैं० : हाँ ! मिस्टर बैनर्जी ही एक दिन नीलाम से खरीद लाए थे।

मिस्टर घोष : नीलाम से ! तब तो इस्तेमाली सेकेण्ड-हेण्ड होगा !

मिसेज घोष : (डाँटकर) तुम में भी कुछ अकल की कमी है; सभी खूबसूरत चीज़ें सेकेण्ड-हेण्ड होती हैं। पुराने कलाकारों की चीजें देखो, आँखें खुल जाती हैं !

[जेनी डर से थर-थर काँपती हुई नीचे आती है। अन्दर आते ही वह दरवाज़ा बन्द कर देती है—बेहद घबराहट में आँखें निकाल-कर—]

जेनी : माँ ! माँ ! अरे बाप रे ?

मिसेज बैं० : क्या हुआ बेटी ?

जेनी : अरे माँ !

मिसेज बैं० : अरे कहेगी भी ! क्या हुआ ?

जेनी : अरे माँ ! दादा तो हिल रहे हैं !

मिसेज घोष : लड़की डर गई है शायद !

मिसेज बैं० : तू पागल हो गई है क्या ? क्या तुझे मालूम नहीं कि दादा का स्वर्गवास हो चुका है ।

जेनी : अरे नहीं माँ, मैंने खुद अपनी आँखों से उन्हें करवट बदलते देखा !

[सबके सब सन्न होकर उठ बैठते हैं, जेनी माँ से चिपट जाती है, मिस्टर घोष अंगीठी के पास खड़े होते हैं, दोनों स्त्रियाँ आमने-सामने, और मिस्टर बैनर्जी अपनी टाई सहलाते हैं ।]

मिस्टर घोष : बहिन, तुम्हीं ऊपर जाओ, तभी तसल्ली होगी; जेनी का क्या ठिकाना !

मिसेज बैं० : चलो ! **(मिस्टर बैनर्जी की तरफ इशारा करके)** तुम भी मेरे साथ आओ । चलो !

[मिस्टर बैनर्जी दरवाजे की तरफ देखते ही घबराकर पीछे हट जाते हैं]

मिस्टर घोष : चुप ! खामोश !

[सब दरवाजे की ओर देखते हैं; दरवाज़ा बहुत धीरे-धीरे खुलता है; बाहर खाँसने की आवाज़ आती है; धीरे-धीरे जिम मुकर्जी, 72 साल का लम्बा, तगड़ा, बुड्ढा आदमी दिखाई देता है । ऊनी ड्रेसिंग गाउन पहने है और पैरों में मोजे, मगर नंगे पैर, एक छड़ी लिये है । अन्दर आते ही—]

जिम मुकर्जी : हो जेनी ! खूब घूम रही है ! **(वह मिस्टर घोष को देखते ही हाथ बढ़ाकर उनका कन्धा पकड़ना चाहते हैं ।)** ओ घोष ! ओह, बेटी ! तुम लोग यहाँ **(मिस्टर घोष तेजी से पीछे हट जाते हैं और मिसेज घोष, सहमी हुई उनका कंधा पकड़े रहती है । वह डरकर सोफ़ा और कुर्सियों के पीछे छिपना चाहती है)**

मिसेज बैं० : (धीरे-धीरे उनकी ओर बढ़ती है) दादा ! क्या तुम ? (वह दादा के पैर को उँगली से कोंचती है कि कहीं उनका भूत तो नहीं उतर आया)

जिम मुकर्जी : हाँ, हाँ; मैं ही तो हूं; यह क्या बेहूदगी कर रही है तू। सनक गई है क्या ?

मिसेज बैं० : (धीरे से, दूसरों की ओर देखकर) अरे यह तो दादा ही हैं ! हे भगवान !!

जिम मुकर्जी : (मिस्टर और मिसेज घोष की ओर देखकर) इतने दिनों बाद तुम आई हो बेटी ! और जैसे मुझे पहचान ही नहीं रही हो। समझती हो कि मैं बुड्ढा हो गया, क्यों ?

मिसेज घोष : दादा ! हम लोग तो घबरा गए। न जाने क्यों बड़ा अचम्भा सा मालूम हो रहा है। आप अच्छे तो हैं न ?

जिम : (जैसे पूरी बात न सुनी हो—कान लगाकर) ऐं ! क्या पूछा तुमने !

मिसेज घोष : आपकी तबीयत तो ठीक है ?

जिम : ओ तबीयत ! तबीयत बिल्कुल ठीक—ए वन है ! हाँ, कल जरा कुछ सिर में दर्द था। मगर कोई बात नहीं। मौत को मैं खदेड़े रहता हूं, अभी बहुतों पर मिट्टी डालना है तब कहीं मैं (धीरे-धीरे हि-हि-हि हंसता है)
(वह सोफ़े पर बैठ जाता है; मिसेज बैनर्जी की ओर इशारा करके) अरे बेटी ! मेरी नई चप्पलें तुमने कहाँ डाल दीं ?

मिसेज बैं० : (घबराहट में) मैंने ! मैंने तो कहीं नहीं देखा; वे तो आलमारी के पास रखी थीं।

जिम : मुझे तो कहीं नहीं दिखीं (वह मिस्टर बैनर्जी को घबराहट में चप्पलें धीरे-धीरे उतारते देखते हैं) ओ ? तुमने पहन रखी थीं; मैं जाने कहाँ-कहाँ ढूंढ़ता रहा।

मिसेज बैं० : मैंने ही कहा था कि वे बड़ी सख्त थीं, बढ़ जाने पर आराम मिलता।

[वह जल्दी से चप्पलें छीनकर दादा के पैरों में डाल देती है]

मिसेज घोष : **(मिस्टर घोष से)** यह तो बड़ी भद्दी बात है। कुछ ही घंटे मरे हुए हों और चप्पलें उसी की कोई पहने। भगवान्, भगवान्। यह भी कोई रीति है। **(जेनी दौड़कर दादा के पैरों के पास बैठ जाती है)**

जेनी : दादा ! दादा ! मुझे कितनी खुशी है कि तुम भगवान् के यहाँ से लौट आए। अच्छा हुआ।

मिसेज बैं० : चुप ! पगली ! बक-बक लगाए रहती है।

जिम : हे ! क्या कहा ! कौन भगवान् के पास से लौटा ! मैं।

मिसेज बैं० : नहीं दादा ! वह कह रही थी कि भगवान ने तुम्हारा सिर दर्द अच्छा कर दिया।

जिम : हाँ ! हाँ बेटी, अब तो बिल्कुल ठीक है।

मिसेज बैं० : **(मिसेज घोष से)** दादा को जेनी बहुत ही प्यारी है; वह उसका बहुत ख्याल करते हैं।

मिसेज घोष : **(मिसेज बैनर्जी से)** हाँ, हाँ मगर रम्मी से ज़्यादा नहीं, रम्मी तो उन्हें जान से ज़्यादा चाहता है।

मिसेज बैं० : तो अब पूछ क्यों नहीं देखती कि दादा ने सोने वाली घड़ी किसे देने को कहा था !

मिसेज घोष : अभी कैसे पूछूं ! यह भी कोई वक्त है !

जिम : **(धीरे-धीरे सबकी ओर देखकर)** ओ ! खोह ! ओ ! खोह ! अरे तुम लोग यह ऐसे कपड़े क्यों पहिने हो। बेटी तुम भी; अरे बेटी तुम भी, जेनी तू भी ! हैं क्या बात है ? कौन चल बसा ? कोई रिश्तेदारी में तो नहीं ! क्यों बेटी !

मिसेज बैं० : दादा, आप शायद उन्हें नहीं जानते, मिस्टर घोष के थे, रिश्तेदार !

जिम : घोष के रिश्तेदार ! कौन रिश्तेदार !

मिसेज बैं० : शायद उनके भाई लगते थे !

मिस्टर घोष : हूं ऊँ ऊँ ! (धीरे से) मेरे तो कोई भाई ही नहीं; किसको मारा !

जिम : कोई भाई था ! च-च-च ! क्या नाम था उसका ?

मिस्टर घोष : नाम ! हाँ ! ऐं !...(वह मिसेज बैनर्जी के पास खड़ा हो जाता है)

मिसेज बैं० : (धीरे से) कह दो—जान घोष ।

मिसेज घोष : (धीरे-धीरे) नहीं नहीं, यह तो मेरे ससुर का नाम है; कह दो हैरी ।

मिस्टर घोष : वह, ऐं; ऐं; डिक घोष !

जिम : डिक घोष ! च-च-च ! कहाँ था बेचारा ?

मिस्टर घोष : वह ! वह था पूना में; फ़ौज में था ।

जिम : शायद वह तुमसे बड़ा होगा ! मैंने उसे देखा नहीं ।

मिस्टर घोष : हाँ, हाँ, करीब, करीब, पाँच साल !

जिम : ओ ! पाँच साल ! बड़ा होनहार होगा ! तो उसी के जनाजे के साथ शायद जा रहे थे तुम लोग ?

मिसेज बैं० : हाँ, हम सब लोग, उन्हीं के—

मिसेज घोष }
मिस्टर घोष } नहीं तो !

मिस्टर बैं० : हाँ, नहीं, नहीं, (वह उठकर एक तरफ हो जाता है)

जिम : (सोफ़ा से उठते हुए) शायद तुम लोग मेरे इन्तजार में थे ? चाय तैयार है क्या ? तो लाओ शुरू करें ।

मिसेज बैं० : (**आगे बढ़कर**) लाइये मैं चाय डालती हूं, बैठिये, बैठिये, आप !

जिम : हाँ, हाँ, बैठो भाई; बेचारी बड़ा ख्याल हम लोगों का रखती है। आओ थोड़ी देर मौज रहे। कुछ आज सर्दी ज़्यादा है।

[जिम एक ओर बैठता है; मिस्टर और मिसेज़ घोष उसके बाएँ; मिस्टर और मिसेज बैनर्जी उसके दाहिने। जेनी एक कुर्सी उठाकर जिम के पास डाल देती है।]

मिसेज बैं० : (**मि० बैनर्जी की ओर इशारा करके**) लाओ, रोटी उठाओ, केक भी उठाओ, दादा को दो।

जिम : हाँ, मैं शुरू करता हूँ, तुम लोग भी लो, तकल्लुफ मत करो, लो बेटी तुम भी लो। (**जेनी को एक टुकड़ा देता है। जिम खूब जमकर खाता है**)

मिस्टर घोष : बड़ी खुशी है कि आपका सिर दर्द ठीक हो गया। तकलीफ के बाद भूख हमेशा लगती है।

जिम : सवेरे शायद मैंने खाना नहीं खाया था। यों ही कुछ थका था, सो गया, शायद आँख लग गई थी। क्यों बेटी ?

मिसेज बैं० : आँख लग गई थी ? कैसी बातें कर रहे हैं दादा ?

जिम : क्यों ? क्या मैं खर्राटे ले रहा था ?

मिसेज घोष
मिस्टर घोष } ओह ! खर्राटे !

जिम : (**खाते-खाते**) मुझे कुछ ठीक याद तो नहीं पड़ता ! मगर शायद कुछ सुस्ती थी। और ठंड जो थी। उसी से कुछ ऐंठकर चित हो गया हूंगा ?

मिस्टर घोष : आपको सुन तो सब पड़ता होगा !

जिम : हाँ, हाँ, काफी सुन पड़ता था। काफी खड़-खड़ की आवाज आई; कोई खास असर नहीं पड़ा; मैं सो लिया ! घोष ! जरा नमक तो उठाना। (**नमक लेकर रोटी पर छिड़कता है**)

मिसेज बैं० : सो नहीं, बिल्कुल बेखबर थे दादा। होश-हवास भी नहीं थे।

जिम : मेरे होश हवास नहीं थे ! तू तो पूरी पागल मालूम होती है। मैं सोया था या तू ! तेरे खुद होश-हवास नहीं।

मिसेज घोष : अच्छा आप बतलाइये कि आपके कमरे में कौन-कौन गया था।

जिम : (सिर खुजला कर) कमरे में, मेरे, कुछ ऐसा ख्याल पड़ता है हाँ, कोई गया जरूर था।

मि० बैनर्जी : क्यों दादा के दिमाग पर बेकार जोर डलवा रहे हो ? फिर सिर दर्द होने लगेगा।

मि० घोष : (दोनों स्त्रियों से) हां, हाँ क्यों तंग कर रही हो ? चुप नहीं रहा जाता क्या ?

जिम : (एकदम से घूमकर अपनी मेज देखता है; कुछ याद करके) हैं, यह क्या ? मेरी मेज कम्बख्त यहाँ कौन ले आया ?

[मिस्टर और मिसेज बैनर्जी चुपचाप सिर झुकाए खड़े रहते हैं।]

मिसेज घोष : मेज़ ! कौन सी मेज़ ! दादा ! (इतने में घड़ी आठ बजाती है।]

जिम : मेरी मेज़ ! और वह ! और वह घड़ी। हैं, हैं, यह सब यहाँ कैसे ?

मिसेज घोष : आपकी मेज दादा ! क्या आपने ली थी ! और घड़ी कैसी ? क्या वह भी आपकी ?

जिम : मेरी नहीं तो क्या गाँव के लोगों की ?

मि० घोष : चः चः चः चः ! आपकी ! चः चः

मिसेज घोष : दादा ! मैं ही अब साफ़-साफ़ बताऊँगी कि यहाँ क्या हो रहा था। यहाँ डकैती हो रही थी डकैती; और नहीं तो क्या ? भला बताओ तो सही।

मिसेज बैनर्जी : चुप भी रहो ! बोले ही चली जाओगी ?

मिसेज घोष : चुप क्यों रहूँ; बोलूँगी, जरूर बोलूँगी। मैं दादा का घर लूटते नहीं देख सकती।

मि० बैनर्जी : कैसी भद्दी बातें करती हो, कुछ मौका महल भी तो देखते हैं?

मिसेज़ घोष : तुम बोलने चले हो। सूप बोले तो बोले चलनी क्या बोले जिसमें बहत्तर छेद। बड़े साहब बन रहे हैं, क्या कहने हैं? मक्कारी है मक्कारी।

मिसेज़ बैनर्जी : (बहिन से) तुम शायद भूल रही हो किसके दरवाजे खड़ी हो?

मि० बैनर्जी : (बचाव की गरज से) जाने दो, जाने दो, ऐसा क्या?

मि० घोष : (दोनों की ओर देखकर) मेरी बीवी कहीं पर भी हो, उसे बोलने का हक है।

मिसेज बैनर्जी : अगर उसे हक है तो मेरे घर के बाहर अपना हक बरते; यहाँ नहीं।

जिम : (गुस्से में उठते हुए) हैं, हैं, यह गंवारपन है। यह हो क्या रहा है? कोई मुझे भी तो बताये। अजीब हालत है। तू-तू, मैं-मैं।

मिसेज घोष : मैं बताऊँगी, और कौन बतायेगा। दादा को लुटते नहीं देख सकती; नहीं देख सकती।

जिम : कौन मुझे लूट रहा है? कौन है बता तो सही?

मिसेज घोष : मिस्टर और मिसेज बैनर्जी! इन्हीं दोनों ने आपकी मेज चुराई, उन्होंने ही घड़ी भी चुराई। वे रात को आपके कमरे में चोरों जैसे घुसे और जब देखा कि आप मर चुके तब चीज़ें हड़प करना चाहीं।

मि० और मिसेज बैनर्जी : बस, बस, बहुत बेहूदगी हो चुकी।

मिसेज घोष : मैं नहीं रुकूँगी, पूरी बात बताऊँगी और दादा जब मर चुके तब···

जिम : हैं ! कौन मर चुका; क्या मैं ?

मिसेज घोष : हाँ हाँ आप !

जिम : मैं कहाँ मैं कहाँ मरा ! मैं तो अच्छा खासा हूँ।

मिसेज घोष : मगर इन लोगों ने जो आपको मार डाला।
[जिम चारों ओर उसको घूर-घूर कर देखता है।]

जिम : अच्छा। अब समझा। यह बात है। इसी वास्ते तुम सबने मेरा मातम मनाने के लिए काले कपड़े पहन रखे हैं। तुम लोग समझे कि मैं चल बसा (हिः हिः हिः धीरे-धीरे हंसता है।) मगर खा गये न धोखा ? क्यों न ! खूब रही (फिर केक उठ कर खाता है और चाय पीने लगता है।)

मिसेज बैनर्जी : (सिसक-सिसक कर) दादा !

जिम : और तुम लोगों ने जरा भी देर न की, जुट गये बटवारे पर। क्यों ?

मिसेज़ घोष : दादा हम दोनों कों इसमें मत लाना, यह लोग खुद ही सब हड़पना चाहते थे।

जिम : मेरी यह बेटी तो बड़ी ही होशियार पहले भी थी। तुमने समझा था कि शायद मेरी वसीयत जल्दी में लिखी गई थी। शायद वह पसन्द न आई होगी।

मि० बैनर्जी : दादा ! क्या आपने वसीयत भी लिख रखी थी।

जिम : हाँ हाँ, इसी मेज के दराज में तो रखी थी ?

मि० घोष : दादा, उसमें क्या-क्या लिखा था ?

मिसेज़ बैनर्जी : (रोकर) दादा ! आप मुझसे नाराज हो गये क्या ? अच्छे दादा। प्यारे दादा !!

जिम : नहीं, नहीं बेटी ! जरा एक प्याली चाय तो और बनाओ। जरा शक्कर काफ़ी डालना और दूध भी काफ़ी।

मिसेज बैनर्जी : हाँ हाँ दादा, यह लीजिए (**चाय बना कर देती है और दूध का बर्तन पूरा उलट देती है।**)

जिम : मैं नाराज तो किसी से नहीं ! और न मैं किसी पर सख्ती करूँगा। मैं बतलाता हूँ कि मेरा इरादा क्या है। जब से जेनी की दादी मरी तब से मैं कुछ दिन तुम दोनों के यहाँ रहा हूँ। अब मैं नई वसीयत में यही रखूँगा कि जिसके घर में मैं मरते वक्त रहूँ उसी को मेरी सब चीजें मिलें। ठीक है न ?

मि० घोष : यह तो कुछ कार्निवाल का जुआ दिखाई देता है।

मिसेज घोष : तो अब आप किसके साथ रहना पसन्द करेंगे ? मेरे या मेरी बहिन के······?

जिम : मैं वही तो सोच रहा था ?

मिसेज घोष : आपको हमारा साथ छोड़े बहुत दिन हुए; अब आप हमारे ही यहाँ चलिए।

मिसेज बैनर्जी : नहीं नहीं, अभी दादा को हमारे यहाँ दिन ही कितने हुए ?

मिसेज घोष : जो जो हरकत इन लोगों ने आपके साथ की उसके बाद आपका यहाँ रहना कुछ ठीक नहीं ?

मिसेज बैनर्जी : और तुम्हीं तो कहती थीं कि दादा हटें तो जान छूटे, पाँच साल में दिवाला खिसका दिया। न लेने के न देने के।

जिम : (**बीच बचाव करते हुए**) तुम दोनों ने फिर तू-तू, मैं-मैं शुरू कर दी ? इस झगड़े को खत्म करने की भी मैंने बड़ी ही अच्छी तरकीब सोची है। मैं शायद तुम दोनों के लिए भार हो गया हूँ।

दोनों बहिनें : (**साथ-साथ**) नहीं नहीं दादा, ऐसा नहीं।

जिम : यकीन तो मुझे यही है।

मि० घोष : नहीं नहीं ऐसा भी क्या ? आपको किसी न किसी के साथ तो रहना ही है।

जिम : यही तो मैं भी समझ रहा हूँ। किसी न किसी का सहारा तो रखना ही है। इसीलिए कल मैं उठते ही तीन काम करूँगा ? पहले तो किसी वकील को पकड़ कर वसीयत ठीक कराऊँगा, दूसरे बीमा कम्पनी जाकर दूसरी किश्त जमा करूँगा; और तीसरे शाम को 'साउथ होटल' की मालकिन को गिर्जे ले जाकर उससे करूँगा—शादी !

सब एक साथ : हैं ! ऍं ! ऍं शादी ! हे भगवान !

जिम : हाँ हाँ शादी—किसी न किसी का सहारा तो चाहिए **(सब को सामने देख कर)** मैंने तुम लोगों को काफ़ी कष्ट दिया है। इतवार को हम दोनों तुम लोगों को धन्यवाद देने आवेंगे। **(मिसेज बनर्जी की ओर देखकर)** और हाँ ! बेटी ! तुम बड़ी अच्छी हो ! पहले से ही तुमने मेज और घड़ी नीचे ला रखी, इसे 'साउथ होटल' भेजने में यहाँ से बड़ी आसानी होगी। खुश रहो बेटे !

खुश रहो बेटी ! **(उठकर धीरे धीरे बाहर जाता है।)**

[सब हक्का बक्का होकर जिम को देखते हैं और परदा धीरे-धीरे गिरता है।]

●

दादा की मौत : नाटक परिचय

'दादा की मौत' श्री खत्री का एक दिलचस्प प्रहसन है। केवल हँसाने की दृष्टि से यह लिखा नहीं गया है, क्योंकि केवल हँसाना कोई साहित्यिक मूल्य नहीं रखता। हँसाने के साथ ही साथ लेखक हमारे समाज पर व्यंग्य भी करते हैं। व्यंग्य और हास्य के मिश्रण से यह नाटक बहुत प्रभावशाली हो गया है।

एक आधुनिक परिवार में, जो शहर में रहता है, पश्चिमी तर्ज के व्यवहार से एक विकट स्थिति पैदा होती है। जिम मुकर्जी बड़ी बेटी के घर रह रहे हैं, पैसा कमाया है और खर्च करके अपनी जिंदगी को सुरुचिपूर्ण तथा आनन्दमय

बनाने की आदत बनाई है। एक सुबह घूमकर आते हैं, सिरदर्द हो जाता है इसलिए लेट जाते हैं। बेटी उन्हें मरा समझकर मातम मनाती है। छोटी बहन मिसेज घोष तथा बहनोई मिस्टर घोष को संदेश भिजवाती है। अब चिंता लगी है कि आने वाले संबंधियों से ज़्यादा दुखी दिखें, मातम में डूबी दिखें तथा पिता (बंगला में संबोधन : दादा) की कीमती जायदाद का बटवारा न होने दें जिससे स्वयं ही उस पर अधिकार कर लें। इस पृष्ठभूमि में मेहमान आते हैं और, जैसी आशा थी, वे भी दिखावे के मातम तथा दुख के साथ 'दादा' की चीजों के बंटवारे का फैसला करने लगते हैं। पर 'दादा' वास्तव में मरे नहीं हैं और दृश्य पर हाजिर हो जाते हैं। स्थिति का पता लग जाने पर वे दोनों बहनों तथा दामादों को यह कहकर अचरज में डाल देते हैं कि वे दूसरी शादी करके अपना अलग घर बसाएँगे, जहाँ उनकी चीजें पहुँचाई जाएँगी।

पश्चिमी ढंग से रहने से जीवन की मौलिक कमजोरियाँ नहीं छिपतीं। नाटक के चरित्र ईसाई हैं और भारतीय चरित्र उनमें मौजूद है। भारतीय चरित्र-विशिष्टता पुरुषों से ज़्यादा औरतों में पायी जाती है। एक दूसरे से मुक़ाबिले की भावना (वह अपनी बहन ही क्यों न हो), दूसरों को हर मौके पर नीचा दिखाने की भावना (वह मातमी अवसर ही क्यों न हो), स्त्री-सुलभ होता है। पुरुष अधिकतर स्त्री का समर्थन ही करता है, पर इससे वह भी उसमें साथ देता है। जेनी बच्ची होने के कारण 'नासमझ' है क्योंकि चोरी को चोरी तथा हड़पने को हड़पना कहती है। जिम बूढ़ा है पर होशियार है इसीलिए बेटियों की योजना पर पानी फेरता है।

नाटकीय शिल्प की दृष्टि से यह एक अत्यन्त सफ़ल रचना है। शुरू से ही मिस्टर तथा मिसेज बैनर्जी का छल समझ में आ जाता है और उनकी चाल के भीतरी विरोधों की अभिव्यक्ति मिलने लगती है। पर नाटक में उत्सुकता बनी रहती है। पहले लगता है कि जेनी भांडा फोड़ेगी पर ऐसा नहीं होता। यह बात देर तक बताई नहीं गई है कि 'दादा' अभी ऊपर ही हैं उन्हें दफनाया नहीं गया है। उनके आने से चरित्रों में जो हड़बड़ाहट होती है वह बहुत सुन्दर ढंग से चित्रित की गई है।

यद्यपि इस वस्तु पर और भी नाटक लिखे गये हैं, "दादा की मौत" अपने विशिष्ट वातावरण तथा मुहावरे के कारण काफ़ी प्रभावशाली है। श्री खत्री इलाहाबाद के रंगमंच से काफ़ी जुड़े रहे हैं और यह नाटक उनके अनुभव का प्रमाण है।

दादा की मौत : सहायक सामग्री

1. **काले कपड़े**—पश्चिमी परंपरा के अनुसार मातम के दिनों में मृतक के परिवार के लोग तथा आने वाले लोग काले कपड़े पहना करते हैं। यह आवश्यक नहीं कि ईसाई होने के कारण ऐसा किया जाय। भारतीय ईसाई, जो निम्न वर्ग के या गरीब हों, ऐसा नहीं करते। ऊँचे घरानों में इस अवसर के लिए खर्च उठाकर काले वस्त्र सिलवाया करते हैं।

2. **बैनर्जी**—नाटक के चरित्र बंगाली हैं। बैनर्जी यद्यपि बंगाली हिंदु नाम है, धर्म परिवर्तन करके ईसाई होने वाले भारतीय अपने पारिवारिक नाम, यहाँ तक कि कई व्यक्तिगत नाम भी वही पुराने रहने देते हैं। जेनी बेशक अंग्रेजी नाम है और अन्यत्र मि० घोष अपने संबंधियों के नाम जॉन, डिक और हैरी बताने लगते हैं जो स्पष्ट ही अंग्रेजी नाम हैं।

3. **काला फीता**—जेनी छोटी लड़की होने के कारण चंचल घूमती-फुदकती रहती है और माता-पिता की इस स्वार्थी बनावट को नहीं समझती। इसीलिए उसे माँ द्वारा सफेद फ्राक पर काला फीता बाँधने का आग्रह किया जाता है।

4. **यहाँ आते ही मुँह की खाएँगी**—मिसेज बैनर्जी को स्वयं से ज्यादा चिंता इस बात की है कि आने वाली बहन मातम की दशा में भी उनसे बढ़कर न रहे।

5. **कभी-कभी उस पर बैठकर प्रेमपत्र ही लिखते थे**—मि० बैनर्जी इस बात का संकेत करते हैं कि दादा रंगीन मिजाजी थे और इस उम्र में

भी प्रेमपत्र लिखते रहते थे। आगे चलकर यह संकेत फूलता है और दादा आकर अपने विवाह की भी घोषणा करते हैं।

6. **जोंक है जोंक**—जोंक (कश्मीरी 'दृक') एक कीड़ा होता है जो आदमी के शरीर से चिपकता है तथा खून चूसता रहता है। जोंक की ही तरह मिसेज बैनर्जी की बहन मिसेज घोष दादा को चूस छोड़ना चाहती थीं जिसका दुख मिसेज बैनर्जी को होता है। शायद इसलिए कि फिर खुद उनके लिए चूसने को कुछ रह नहीं जाएगा।

7. **तो क्या हम मौसी से बचाकर**—जेनी अभी माँ-बाप के छल को समझती नहीं इसलिए सीधी बात कहती है।

8. **उठो, अब मेज की फिकर करो**—मिसेज बैनर्जी बीच में दादा के मरने से दुखी होने का भाव प्रकट करती है और उन्हें शोक होता है कि वे अपनी नयी ख़रीदी चीजों (जैसे मेज) का उपयोग भी न कर सके। पर साथ ही यह कहकर कि मेज की फ़िकर करो, वे मतलब की बात पर आती हैं। इससे जाहिर है कि दुख की बात वे केवल पूर्वाभ्यास (रिहर्सल) के लिए करती हैं कि बहन तथा बहनोई के सामने बन सकें।

9. **तालमखाना**—एक प्रकार का औषधि-फल, मखाना। उसके एक ही आँख होती है इसीलिए रूपक के रूप में प्रयोग किया गया है।

10. **हम लोगों ने अभी ही नाप दे दिए हैं**—बैनर्जी बहन के कपड़ों की निम्नता के बारे में जो अनुमान किए थीं, वे गलत निकले। मिसेज घोष तो अधिक कीमती लिबास पहने आई इसलिए कह बैठीं कि अभी नाप दिए हैं। मिसेज घोष कुछ कम नहीं, इस अवसर का पूरा फ़ायदा उठाकर काले कपड़े सिले-सिलाए खरीद आई हैं, वरना और कब पहनने को मिलते ?

11. **पूरब का देहाती**—'पूरब' से तात्पर्य पूर्वी उत्तर प्रदेश या बिहार जहाँ के आर्थिक पिछड़ेपन के कारण लोगों को और फिर देहातियों को और भी पिछड़ा तथा चमत्कारिक माना जाता है। चमत्कार पर

विश्वास करना दिमागी पिछड़ेपन का प्रमाण है---यह तो यही बताता है कि मिसेज घोष मन से उन पूरबियों से भिन्न नहीं, जिनसे वे अपने आपको भिन्न समझती होंगी।

12. **अब यह तय करना चाहिए कि पहले हम लोग**—ऊपर मुर्दा पड़ा है, इस बात का पहला संकेत है। पर चाय का पानी उबल रहा है इसलिए चाय ही पी जाए, मुर्दा ठहर सकता है। इससे साफ़ लगता है कि मुर्दा उनके लिए कोई समस्या नहीं उसके मरने से इन्हें दुख नहीं।

13. **चुभती हुई कविता**---दादा की मौत इश्तहार के लिए है और इसलिए इसकी खबर अखबार में दी जा रही है। कई और लोग ऐसा करते हैं कविताएँ लिखवाकर छपवाते हैं। उनमें से ही कोई चुनकर दी जा सकती है। कविता, इस प्रकार, उनकी अपनी भावना की प्रतीक नहीं भी हो तो कोई बात नहीं।

14. **अंग्रेजी ही क्यों न चलने दें**—चरित्र बातचीत तो हिंदी में करते हैं जो उनकी मातृभाषा है, पर कहते हैं कि अंग्रेजी की कविता सबकी समझ में आ जाएगी। वस्तुतः जो लोग वह कविता पढ़ने वाले हैं वे भी इन्हीं जैसे झूठे ढोलों वाले हैं, जिन्हें सही भावना से ज्यादा 'आजकल के स्टैण्डर्ड' की ज्यादा फ़िकर होती है।

15. **लंगड़ी भिन्न**—अंकगणित (अर्थमेटिक) में 'भिन्न' का अर्थ होता है कसर या फ्रैक्शन। उसी का एक भेद नाम की विचित्रता के कारण इस कविता की अंतिम लाइन सा लगता है। उसमें बड़ा अंक बटा छोटा अंक होता है। इस लाइन में 'us content' व्याकरण की तथा वाक्य रचना की दृष्टि से अशुद्ध तथा अपूर्ण है पर इस अवसर के लिए काम चलाऊ माना जाता है।

16. **चपरगट्टू**—अभागा। दादा जान-बूझकर और हम सबको उल्लू बनाकर मर गए, बिना हमारा सही प्रबंध किए। दादा के बारे में अब इनके भाव बदल जाते हैं और दिखावे के लिए भी कोई शोक प्रकट नहीं करता, यहाँ तक कि उन्हें गिरहकट भी कहा जाता है।

17. **वसीयत**—दादा की जायदाद का बटवारा होता रहा पर वसीयत की बात करके उन्होंने सबको चौंका दिया ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) बोध :

1. इस नाटक में उन प्रसंगों, वाक्यों या शब्दों को खोजें, जिन से लगता है कि नाटक एक ईसाई परिवार से संबद्ध है ।
2. आधुनिक पश्चिमी जीवन पर इस नाटक में क्या व्यंग्य किया गया है ?
3. इस नाटक में 'हँसाने के साथ ही साथ लेखक समाज पर व्यंग्य भी करते हैं' । इस कथन की सोदाहरण व्याख्या कीजिए ।
4. मिसेज बैनर्जी तथा मिसेज घोष के चरित्रों की तुलना कीजिए ।

(ख) विवरणात्मक अध्ययन :

प्रसंग देकर व्याख्या कीजिए :

1. हम लोगों के कपड़े ज़्यादा ठीक तो नहीं—···मत सोच करोगे ।
2. तुम्हारी चिकनी चुपड़ी बातों से······जोंक है जोंक ।
3. यह तो बड़ा आसान है······बेवक्त चले कि क्या किया जाय ।
4. तो आप शायद महाकाव्य चाहती हैं······फिजूल खर्ची ठीक नहीं ।
5. मैं नाराज तो किसी से नहीं······ठीक है न ?